दुरसा आढ़ा

भारतीय साहित्य के निर्माता

दुरसा आढ़ा

रावत सारस्वत

साहित्य अकादेमी

Durasa Aaḍha : A monograph by Rawat Saraswat on the Rajasthani author. Sahitya Akademi, New Delhi

प्रथम संस्करण : 1983

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय :

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह रोड, नई दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय :

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029

29, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंजिल), तेनामपेट, मद्रास 600018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक :
संजय प्रिंटर्स,
दिल्ली 110032

विषय-क्रम

अध्याय 1

जीवन-परिचय

मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य में चारण कवियों की एक लम्बी और गौरवपूर्ण परम्परा रही है। ये लोग अपनी सशक्त काव्य-क्षमता और प्रतिभा से क्षत्रियोचित गुणों को प्रोत्साहित करते थे। स्फूर्ति और प्रेरणा से ओतप्रोत अपने काव्य का स्वयं ओजस्वी वाणी में पाठ कर ये वीरों में जैसे नए प्राण फूंक देते थे। कलम के धनी इन कवियों ने अनेक युद्धों में स्वयं तलवार चलाकर आदर्शों के लिए मर मिटने की अमूर्त्त भावना को साकार किया था। कथनी और करनी का यह अपूर्व सामंजस्य उन्होंने चरितार्थ करके दिखाया था। देशभाषा में कहे गए चारण कवियों के वे गीत-कवित्त राजस्थानी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। ऐसे ही स्वनामधन्य कवि-पुंगवों में अग्रगण्य थे, अपने समय के अत्यधिक यशस्वी और अद्भुत प्रतिभासम्पन्न कवि, दुरसा आढ़ा।

चिरकाल से भारतीय कवियों और लेखकों में एक ऐसी विनयपूर्ण भावना रही है जिसने उन्हें स्वयं के विषय में विशेष ज्ञातव्य प्रस्तुत करने से वर्जित किया है। यही कारण है कि हम अपने महानतम कवियों-लेखकों के व्यक्तिगत जीवन के विषय में उनकी रचनाओं से कुछ नहीं जान पाते। वाल्मीकि, पाणिनि, भास, कालिदास, तुलसी, सूर आदि सभी महान लेखकों ने इस विषय में मौन ही रखा है। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए राजस्थानी कवियों ने भी अपनी रचनाओं में अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। ऐसी स्थिति में जो कुछ उन लेखकों के विषय में मौखिक परम्परा से ज्ञात होता है, उसी के आधार पर सुधीजनों ने उनके इतिवृत्त संकलित करने की चेष्टायें की हैं।

राजस्थान के चारण लेखकों के विषय में ऐसा ही एक प्रयत्न राजस्थान के ख्यातिप्राप्त इतिहासकार एवं साहित्यप्रेमी स्व० मुंशी देवीप्रसाद ने किया था। चारण जाति के अपने क्षेत्रों में भी इस प्रकार की मौखिक परम्परा रहती आई है, पर उन्हें लिपिवद्ध करने की कोई सुनियोजित नीति पहले कभी नहीं अपनाई गई। आधुनिक युग में साहित्य के शोध छात्रों तथा पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों-संपादकों ने

इस दिशा में कुछ प्रयत्न किए हैं, जिनसे अनेक कवियों के परिचय प्रकाश में आए हैं। जहां तक दुरसा आढ़ा के जीवन-परिचय का प्रश्न है, इनके विषय में सर्वश्री मोतीलाल मेनारिया, हीरालाल माहेश्वरी, सीताराम लाळस, मोहनलाल जिज्ञासु आदि साहित्य के इतिहास-लेखकों ने प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त गुजरात के श्री शंकरदान जेठीभाई देथा तथा मुंशी देवीप्रसाद ने विस्तारपूर्वक सामग्री प्रस्तुत की है। स्फुट रूप में अनेक अन्य प्रयत्न भी हुए हैं। इसी सामग्री के आधार पर दुरसाजी का जीवन-वृत्त यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

दुरसा का पूरा नाम दुरसाणंद था, यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। चारणों में करमाणंद, आणंद, वींझाणंद, आदि नाम दुरसा के पूर्ववर्ती हैं। नामकरण की भारतीय शैली में रामानंद, घनानंद, विवेकानंद, सहजानंद, ओमानंद, परमानंद आदि नाम हैं ही। इस नाम का उल्लेख कलकत्ता स्थित 'रॉयल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह की प्रति संख्या सी० 23-22 में प्रतिलिपित "दूहा सोलंकी वीरमदेजीरा" में इस प्रकार उपलब्ध है: "दूहा सोलंकी वीरमदेजीरा आढा दुरसाणंद रा कहीया—"। पर इस नाम का प्रचलन अन्यत्र देखने में नहीं आया, और समूचे साहित्य में ये 'दुरसोजी' या 'दुरसाजी' के नाम से ही जाने जाते हैं।

'आढ़ा' चारणों की एक शाखा है जिसका नामकरण उनके मूल निवास, भूतपूर्व जोधपुर राज्य के मालानी परगने के गांव 'आढ़ा', के कारण हुआ। पर 'चारण' जाति के विषय में निर्णयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनेक प्रकार की पौराणिक देवोत्पत्ति-विषयक दन्तकथाओं का सारांश यही लिया जा सकता है कि चारण लोग स्तुतिपाठक या विरुदगायक ही रहे थे। "चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणाः" यह व्युत्पत्ति प्रायः चारणों को भी मान्य है। स्तुति पाठकों के रूप में चारणों के वर्णन भारतीय साहित्य में बहुशः प्राप्त हैं। सम्राट हर्षवर्धन के सम्बन्ध में महाकवि बाणभट्ट द्वारा लिखित 'हर्षचरित' नामक ग्रंथ में इनका उल्लेख आता है। बाण ने कहा है कि राज्यश्री के विवाह में दूर-दूर से आए हुए चारणों को मातृका-पूजन की कोठरी में ठहराया गया था। ये लोग सम्राट के आगे-पीछे स्तुतिगान करते हुए चल रहे थे। "दूर-दूर से आए हुए" उल्लेख से यह आभास होता है कि संभवतः ये लोग गुजरात-राजस्थान जैसे सुदूर प्रदेशों से कन्नौज पहुंचे हों।

एक पौराणिक मान्यता के अनुसार पहिले चारण लोग गंधमादन पर्वत पर रहते थे तथा बाद में राजा पृथु के काल में स्तुतिगायन के फलस्वरूप इन्हें 'तैलंग देश' यज्ञ की दक्षिणा में दिया गया। उक्त देश में पर्याप्त समय तक रहकर ये लोग सिंध में जा बसे जहां पास ही में इनकी आराध्यदेवी 'हिंगलाज' का स्थान है। सिंध से यह जाति काठियावाड़ और गुजरात, तथा राजस्थान और मालवा में

फैली। शेष भारत में अन्यत्र इनका कहीं उल्लेख बाद में प्राप्त नहीं होता। इनकी प्रमुख शाखायें काछेले (कच्छ में रहने के कारण), मारू (मारवाड़ में बसने के कारण), सोरठिया (सौराष्ट्र में निवास करने से) तथा तुम्बेल (?) कही जाती हैं।

चारण लोग वैसे तो वैष्णव ही हैं पर कतिपय चारण महिलाओं को ये शक्ति के अवतार के रूप में मानते एवं पूजते आए हैं। सिंध में 'मामड़' नामक चारण के घर सात कन्याओं ने जन्म लिया बताते हैं जिनमें से एक 'आवड़' हिंगलाज देवी का अवतार मानी जाती है। इन देवियों के रूप-सौन्दर्य से आसक्त होकर तत्कालीन सिंध नरेश ने इनके साथ विवाह करना चाहा, जिससे ये सिंध छोड़कर चली गईं। 'आवड़' और सबसे छोटी 'लख्वी' चारण-समाज में बड़े भक्ति-भाव से पूजी गईं। कालान्तर में देवी-अवतारों के इस क्रम में बीकानेर के पास 'देशनोक' नामक स्थान पर 'करणी' नामक देवी हुई जिसने बीकानेर के संस्थापक राव 'बीका' को राज्य-प्राप्ति में सहायता की। करणी देवी के मंदिर प्रदेश में अनेक स्थानों पर हैं, तथा राजपूत एवं चारण-समाज में इनकी बड़ी मान्यता है। राजपूत एवं चारण परस्पर अभिवादन करते समय '*जय माताजी की*' कहकर देवी को सम्मान देते हैं। देवी-अवतारों का यह क्रम अब भी चालू है। इन्द्रबाई तथा सायरबाई नामक चारण देवियां इसी युग की हैं।

यद्यपि काव्य-रचना को चारणों ने व्यवसाय के रूप में ही ग्रहण कर लिया था, पर इतिहास में चारणों द्वारा गौ-पालन तथा घोड़ों की खरीद-बिक्री का कार्य किये जाने के दृष्टांत मिलते हैं। कृषि-कार्य भी इनका धन्धा रहा है। इनकी वेष-भूषा से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि ये अवश्य ही भारत के उत्तर-पश्चिमी भू-भाग में ही सर्वप्रथम आकर बसे और वहीं से दो शाखाओं के रूप में गुजरात और राजस्थान में आए। इनकी उप शाखाओं में सौदा, आढ़ा, झूला, रतनू, गाडण, वीठू, लाळस, देथा, दधवाड़िया, सांदू, खिड़िया, कविया, आसिया, टापरिया, सामोर, पाल्हावत, मीसण आदि अनेक प्रसिद्ध कविवंश हुए हैं। 'वारठ' इनकी सम्मानसूचक पदवी है, जिसकी व्युत्पत्ति "द्वार पर विवाहादि अवसरों पर 'त्याग' के लिए हठ" करने के प्रसंग से की जाती है। पर द्वारभट्टों की पुरानी परम्परा ही संभवतः अधिक समीचीन है। पोळपात (प्रतोली पात्र), कविराजा, गढ़वी आदि अन्य अनेक नामों से भी इन्हें संबोधित किया जाता है।

चारणों के समान ही भट्टों-रावों-कवीसरों-कविरावों का एक समाज भी काव्य-रचना में कुशल समझा गया है। ये लोग भी स्तुतिपाठक ही हैं। संभवतः, चारणों से पूर्व ही ये लोग विरुदगायकों के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। तेरहवीं शताब्दी में चारणों के नामोल्लेख जिन पुरातन प्रबंधों में मिलते हैं वहां ब्रम्हभट्ट, द्वारभट्ट, बंभ, आदि नामों से इन कवियों की रचनायें भी प्राप्त होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर अप्रभ्रंश-काल में विरुदगायकों के वर्गों में से कुछ ने

शौरसेनी अपभ्रंश का सहारा लेकर 'पिंगल' नामक काव्य-भाषा में रचनायें चालू रखीं, तथा शेष ने आभीर अपभ्रंश की बहुलता के साथ 'डिंगल' नामकरण कर अपनी स्वतंत्र भाषा का उद्घोष किया। 'डिंगल' का नामकरण विद्वानों के बहुमत के अनुसार 'पिंगल' के अनुकरण पर ही हुआ, पर दोनों काव्य-भाषाओं में मात्र शैलीगत ही अन्तर नहीं था, अपितु भाषागत पार्थक्य भी पर्याप्त था। पिंगल और डिंगल के इस द्वन्द्व के पीछे भट्टों और चारणों के व्यावसायिक स्वार्थ ही अधिक थे। ये दोनों वर्ग लम्बे अर्से तक एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न करते रहे। पर कालान्तर में सामंजस्य हो गया और दोनों ही वर्ग दोनों ही भाषाओं में रचनायें करने लगे। चारणों और उनकी भाषा 'डिंगल' का पलड़ा निश्चय ही भारी रहा। पर यह ध्यान देने योग्य है कि चारण विद्वानों के रचित 'अवतार चरित्र', 'प्रवीण-सागर' 'वीरविनोद' आदि सुप्रसिद्ध ग्रंथ पिंगल में ही लिखे गए, जबकि 'वंशभास्कर' जैसे अतिप्रसिद्ध ग्रंथ में भी 'पिंगल' का खुलकर प्रयोग किया गया। इस व्यावसायिक स्पर्धा का प्रारंभ संभवत: सोलहवीं शताब्दी में अथवा इससे भी पूर्व ही हो गया था। यह भी संभव है कि भट्ट 'चंदवरदाई' के विख्यात 'पृथ्वीराज रासो' के बाद ही चारणों ने इस स्पर्धा का प्रारंभ कर दिया हो।

राजस्थानी साहित्य में चारणों की देन 'गीत' और 'ख्यात' के रूप में ही विशेष रही है। 'गीत' वीरों को प्रेरित करने का काव्यगत प्रयत्न था, तो 'ख्यात' उनके वंश-गौरव का प्रेरणास्पद इतिवृत्त। ख्यात प्राय: गद्य में लिखी जाने लगी थीं। गीत और ख्यात के प्रसंग में चारणों के काव्य को हेय समझने का आग्रह करते हुए नवीं शताब्दी में 'अनर्घराघव' नाटक के कर्ता मुरारि कवि का एक सुभाषित, हरि कवि द्वारा संकलित 'सुभाषित हारावली' में मिलता है, जिसमें कहा गया है कि 'वाल्मीकि जैसे संस्कृत कवियों से ही 'राम' को यश प्राप्त हुआ, इसलिए हे राजन्, चारणों के गीतों-ख्यातों से लुब्ध होकर प्रात:स्मरणीय संस्कृत कवियों की अवगणना मत करो'—

चर्चाभिश्चारणानां क्षितिरमणपरां प्राप्य संमोद लीलां,
मा कीर्ति : सौविदल्लानवगणय कविप्रातवाणी विलासान्।
गीतं ख्यातं च नाम्ना किमपि रघुपतेरद्ययावत्प्रसादात्
वाल्मीकेरेव धात्रीं, धवलयति यशोमुद्रया रामभद्र: ॥

इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि चारणों की तत्कालीन रचनायें अब नष्ट हो गई हैं और अप्राप्य हैं। यद्यपि गीत, दोहे आदि तो बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी से ही मिलने लगते हैं, पर ख्यातें तो सतरहवीं से पहिले की ही नहीं मिलती हैं। प्रसिद्ध चारण ख्यात-लेखकों में 'आसिया बांकीदास' तथा 'सिढायच दयालदास' के नाम उल्लेखनीय हैं।

गीतकार के रूप में विख्यात दुरसाजी का जन्म संवत् 1592 (सन् 1535 ई०) में तत्कालीन मारवाड़ के 'धूंदला' गांव में हुआ बताते हैं। कई लोग संवत् 1595 (सन् 1538 ई०) भी मानते हैं। इनकी मां 'धन्नीबाई' 'बोगसा' शाखा के चारण 'गोविन्द' की बहिन थी। दुरसा के दादा 'अमराजी' के पिता और दादा के नाम क्रमशः 'खूमाजी' और 'भीमाजी' थे। अमरा के दो पुत्रों—'मेहोजी' और 'कानोजी' में मेहोजी दुरसा के पिता थे। एक किंवदन्ति के अनुसार एक वर्ष अकाल में राज्य का कामदार इनके गांव में अनाज खरीदने आया, जो किसी तकरार के कारण कानोजी के हाथ से मारा गया। इस पर राज्य के कोप से डर कर मेहोजी तथा कानोजी गांव छोड़कर परगने सोजत के गांव 'धूंदला' में आ बसे थे। मेहोजी तो यहीं रह गए तथा कानोजी तत्कालीन आमेर राज्य के गांव 'उणियारा' में बस गए। एक मान्यता के अनुसार मेहोजी ने अत्यधिक निर्धनता के कारण सन्यास ले लिया और दुरसा की माता ने ही कठिन परिश्रम करके इनका पालन-पोषण किया।

कहा जाता है कि दुरसा के जन्म के समय, जब पुत्रोत्सव का प्रतीक 'थाल' बजाया जा रहा था, तो गुजरात से दिल्ली को जाते एक मौलवी उधर से गुजरे, और उन्होंने उस सायत को शुभ देखकर दुरसा के भाग्यशाली होने की भविष्य-वाणी की।

माना जाता है कि बाल्यकाल में दुरसाजी एक 'सीरवी' किसान के यहाँ नौकर थे। एक दिन उस किसान ने, सिंचाई करते समय नाले की मिट्टी बह जाने के कारण, दुरसा को मिट्टी के स्थान पर लिटा दिया और सिंचाई करने लगा। उसी समय समीपवर्ती ठिकाने 'बगड़ी' के ठाकुर उधर आ निकले और वे दुरसा को अपने साथ लिवा ले गए, तथा उनकी शिक्षा का प्रबंध किया। 'सूंडा' शाखा के इस राजपूत ठाकुर ने दुरसा को होनहार जानकर मारवाड़ के राव 'मालदेव' से मिलाया। राव मालदेव के प्रभावित होने पर ठाकुर ने 'धूंदला' गांव का पट्टा उनके नाम करवा दिया। दुरसा ने उक्त ठाकुर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए निम्न सोरठा कहा है—

माथै मावीतांह, जनम तणौ कृयावर जितो।
सूंडो सुध्र पातांह, पाळणहार प्रतापसी॥

अर्थात्, मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म देकर जो उपकार किया है वैसा ही प्रतापसिंह सूंडा ने मेरा पालन-पोषण करके किया है।

मुंशी देवीप्रसाद का मानना है कि राव मालदेव के समय बगड़ी के ठाकुर 'जेताजी' थे, जो संवत् 1600(सन् 1543 ई०) में शेरशाह से लड़कर काम आये, तथा उनके पुत्र 'पृथ्वीराज' और 'देवीप्रसाद' पीछे से राव मालदेव के सेनापति रहे

थे। ऐसी स्थिति में प्रतापसिंह से संबंधित किंवदन्ति तथा उपर्युक्त छंद संदेहास्पद प्रतीत होते हैं।

एक दन्तकथा के अनुसार 'करणी' देवी ने, जो दुरसाजी के कुल में ही जन्मी थी, अपने विवाह में सम्मिलित नहीं होने के कारण अपने पीहर वालों को श्राप दे दिया था, जिससे ग्रस्त होने के कारण 'आढ़ा' गांव को वे लोग छोड़ने लगे थे। इसी प्रसंग में मेहाजी वहां से चलकर जैतारण गांव में आए। यहां उन्हें गड़ा हुआ माल मिला जिससे मकान किराए लेकर रहने लगे। यहीं किसी जैन यति ने इन्हें विद्याध्ययन करवाया।

विवाह तथा संतति

दुरसा के दो विवाहिता सजातीय स्त्रियाँ तथा एक 'केसरबाई' नामक 'पासवान' थीं। विवाहिताओं से 'भारमल', 'जगमाल', 'सादूल', 'कमजी' एवं 'किसना' नामक पुत्र हुए। भारमल अंधा था तथा इसके पुत्र रूपजी के कारण दुरसा के गृहकलह हो गया। बड़े लड़कों ने दुरसा की समस्त जागीर ले ली तथा दुरसा स्वयं किसना के पास रहे। पासवान के पुत्र का नाम 'माधाजी' था। इसे दुरसाजी ने महाराणा अमरसिंह से कहकर 5-6 हजार की वार्षिक आय का 'कागड़ी' नामक गांव जागीर में दिलवा दिया। एक सौ तेरह वर्ष की आयु में संवत् 1708 (सन् 1651 ई०) में, कुछ के अनुसार संवत् 1712 (सन् 1655 ई०) में 120 वर्ष की आयु में, दुरसा का स्वर्गवास हुआ। इनकी दो स्त्रियां, एक पासवान तथा दो दासियां इनके साथ सती हुई।

दुरसाजी के पर्याप्त लम्बे और घटनापूर्ण जीवन की अनेक मनोरंजक कथायें प्रचलित हैं। उनका सारांश देते हुए थोड़ा परिचय यहां दिया जा रहा है :—

1. **दुरसाजी और अकबर**—संवत् 1628 (सन् 1571 ई०) में बादशाह अकबर गुजरात जाते हुए यहां 'पाली' परगने के 'गूंदोज' गांव में ठहरे। बगड़ी के ठाकुर दुरसा के साथ यहां मुजरे के लिए हाजिर हुए। इस अवसर पर दुरसा ने अकबर की प्रशंसा में एक छंद सुनाया जिससे प्रसन्न होकर अकबर ने इन्हें एक हाथी तथा 'लाखपसाव' (एक लाख के मूल्य का दान) दिया।

2. **दुरसाजी और बैरामखां**—एक बार दुरसाजी 'पुष्कर' स्नान करने के लिए गए। उस समय अकबर के अभिभावक बैरामखां अजमेर आए हुए थे। दुरसाजी ने उनसे मिलने का प्रयत्न किया, पर बैरामखां के लोगों ने मिलने नहीं दिया। इस पर उन्होंने युक्ति सोची। एक दिन जब बैरामखां बाहर जा रहे थे तो दुरसा ने उनके मार्ग से थोड़ी दूर जाकर ये पंक्तियां जोर-जोर से पढ़नी प्रारंभ कीं—

आफताब अंधेर पर, अगनी पर ज्यूं नीर।
दुरसा कवि का दुक्ख पर, है बहराम वजीर।।

इस पर बैरामखां ने हाथ के इशारे से दुरसाजी को निकट बुलाया तो उन्होंने तीन दोहे और कहे—

तूं बंदा अल्लाह का, मैं वन्दा तेराह।
तेरा है मालिक खुदा, तू मालिक मेराह।।
पीर पराई मेटना, एह पीर का काम।
मेरी पीड़ा मेट दे, बड़ा पीर बहराम।।
विभीपण कूं वारिधितट, भेंटे वो एक राम।
अब मिलिया अजमेर में, दुरसा कूं बैराम।।

बैरामखां ने प्रसन्न होकर इन्हें डेरे पर बुलाकर आवभगत की और एक लाख रुपया पुरस्कार में दिया। दुरसा ने बैरामखां से विनती की कि वे उसे 'अकबर' से मिला दें। बैरामखां ने वचन दिया कि वह दो माह बाद दिल्ली आये तो मुजरा करा दिया जाएगा। इस पर दुरसा ने दिल्ली जाकर अकबर की प्रशंसा में निम्नलिखित आशय का गीत कहा—

वांणांबळि लखण (कै तूं) अरजण वांणांबळि।
सर दस रोळण (कै तूं) कंस संहार।।
सांसौ भाँज हुमायु समोभ्रम।
अकबर साह कवण अवतार।।

"तूं धनुर्विद् लक्ष्मण है या अर्जुन ? दशसिर का संहार करने वाला राम है या कंस को मारने वाला कृष्ण ?" हे हुमायूं के पुत्र, अकबर, मेरे संशय को मिटा, तू इनमें से किस का अवतार है ?" कहते हैं चार पदों के इस गीत को सुनकर अकबर ने दुरसा को कोड़पसाव दिया। यह घटना संवत् 1615-16 (सन् 1558-59 ई०) की बताई जाती है।

3. **राव सुरताण से संबंध**—संवत् 1640 (सन् 1583 ई०) में अकबर ने 'जगमाल' सीसोदिया को सीरोही के राव 'सुरताण' के विरुद्ध सहायता दी। जोधपुर के 'रायसिंह चंद्रसेनोत' के साथ दुरसा ने भी 'दत्ताणी' नामक स्थान पर लड़े गए इस युद्ध में भाग लिया था। इस युद्ध में सुरताण ने अच्छी वीरता दिखाई और दुरसा बुरी तरह घायल हो गए। जब युद्ध-क्षेत्र में किसी ने घायल दुरसा को मारने के लिए तलवार उठाई तो उन्होंने अपने आपको चारण बताया। इस पर उन्हें कहा गया कि चारण हो तो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए 'समरा देवड़ा' के विषय में कुछ कहो। दुरसा ने तत्काल निम्नलिखित दोहा सुना दिया—

धर रावां, जस डूंगरां, व्रद पोतां सत्रहाण।
समरै मरण सुधारियो, चहुं थोकां चहुवाण।।

"अर्थात्, समरा देवड़ा ने चारों ही रूपों में अपना जीवन सार्थक कर लिया। सीरोही के रावों की धरती की रक्षा की, पहाड़ों को यश प्रदान किया, अपने वंशजों को कीर्ति दी तथा शत्रुओं की हानि की।"

राव सुरताण यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें पालकी में बिठाकर घर ले गया। कालान्तर में उन्हें 'पोळपात' बनाकर 'कोड़पसाव' का दान तथा 'पेशुवा' और 'साल' नामक दो गांव भी दिए। इस संबंध में यह भी कहा जाता है कि राव ने दुरसा को चार गांव दिए थे जिनमें से दो तो उन्होंने सुप्रसिद्ध 'सारणेश्वर' महादेव के मंदिर को अर्पित कर दिए तथा दो स्वयं के लिए रखे।

4. **मोटा राजा और दुरसाजी**—संवत् 1643 (सन् 1586 ई०) में दुरसाजी जोधपुर के मोटा राजा 'उदयसिंह' के चारण-विरोधी कार्यों का विरोध करने के लिए सामूहिक धरने में बैठे थे। परंपरा के अनुसार दुरसाजी ने भी अपने कंठ में कटार खाकर मरना चाहा था, पर किसी चारण ने यह कह कर रोक लिया कि आप जीते रहोगे तो कभी किसी बड़े मुंह से राजा को उलहना दिलवाओगे। तत्पश्चात् दुरसाजी अकबर के दरबार में गए और वहां उनकी प्रशंसा में गीत पढ़ा। अकबर ने जब पूछा कि तुम्हारी आवाज भर्राई हुई क्यों है, तो उन्होंने मोटा राजा की ओर इशारा करके कहा कि यह सब इनकी कृपा है। कहते हैं कि सारा वृत्तांत सुनकर बादशाह ने मोटा राजा के कार्य को अनुचित बताया।

5. **बारहठ लक्खा और दुरसाजी**—बारहठ लक्खा अकबर के कृपा-पात्र थे। उन्होंने दुरसाजी को शाही कृपा दिलवाने में मदद की थी। इस उपकार की भावना से दुरसाजी ने उनकी प्रशंसा में यह दोहा कहा था—

दिल्ली दरगह अंब तरु, ऊंचो घणो अपार।
चारण लक्खा चारणां डाळ नमावणहार॥

"दिल्ली के दरबार में कृपा रूपी आम का पेड़ बहुत ऊंचा है। चारणों के लिए उसकी डाली को झुकाने वाला लाखा चारण ही है।" इस पर लाखा ने सारा श्रेय भगवती करणी को ही देते हुए यह प्रत्युत्तर कहा—

दुरसा डूंगरड़ेह, कुण काला छाया करै।
आढा आपांणेह, महर करीजे मेहवत॥

"दुरसा, डूंगरों (पर्वतों) पर छाया कौन करता है! हे आढ़ा गोत्र के वंशज, अपने (चारणों) पर तो भगवती करणी ही की कृपा है।"

6. **महाराणा अमरसिंह से संपर्क**—कहा जाता है कि अपने स्वर्गीय पिता महाराणा 'प्रताप' से प्रेरणा पाकर अमरसिंह ने दुरसाजी को अपने यहां बुलवाया और 'रायपुरिया' नामक गांव के साथ 'कोड़पसाव' भी दिया। 'गोढ़वाड़' परगने का यह गांव दुरसाजी ने, उदयपुर जाते समय उक्त गांव के चौधरियों की राय

मानकर, मांगा था। संबंधित छंद का एक चरण इस प्रकार है—

"नेड़ो हूं जावूं नवकोटी, राण दिए तो रायपुर"

"अर्थात्, राणाजी यदि मुझे रायपुरिया दे दें तो मैं नवकोटी मारवाड़ के नजदीक हो जाऊं।" एक अन्य पंक्ति—'क्षत्रियां कुळ लहणो छोड़ायो, राज दियंतां रायपुर" में रायपुर के दान से क्षत्रियों पर चारणों के ऋण से उऋण होने की बात कही गई है।

कहते हैं एक बार दरबार में बैठते समय दुरसाजी नीचे गिर गए थे, जिस पर महाराणा ने स्वयं 'खम्मा खम्मा' (क्षमा-क्षमा) कहते हुए उन्हें उठाकर बैठाया था। इस अवसर पर भी दुरसाजी ने 'दुठाड़ियो' नामक गांव उनसे प्राप्त किया था, जिस संबंध की पंक्ति इस प्रकार है..."खमा खमा करि उठाड़ियो, तो दे राजा दुठाड़ियो।"

7. **मोहब्बतखान से संबंध**—कहा जाता है कि मोहब्बतखान (महावतखां) ने दुरसा को एक लाख रुपये वार्षिक देना बांध दिया था। वृद्धावस्था के कारण दुरसाजी स्वयं दिल्ली नहीं जा सके और अपने छोटे पुत्र किसना को ही अजमेर में खान के पास भेज दिया। खान ने मजबूरी बताई और कहा कि अजमेर में पैसे कहां है ! इस पर दुरसाजी खुद आकर मिले और एक छंद कहा, जिसकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

"तू ज्यां ही दिल्ली तखत, खान मोहब्बतसींह।"—

इससे प्रसन्न होकर खान ने वहीं रकम का प्रबंध करवा दिया।

8. **जोधपुर महाराजा गजसिंह द्वारा सम्मान**—कहते हैं कि 'रायपुरिया' में हवेली बनवाने के लिए दुरसाजी 'सोजत' से पत्थर मंगवाते थे। एक बार महाराजा गजसिंह जब सोजत में थे तो गाड़ियां देखकर पूछताछ की और गांव 'पांचेटिया' में डेरा करके दुरसाजी को बुलवाया। जब महाराजा ने उन्हें साथ चलने को कहा तो वे बोले कि 'आउवा' के धरने में अक्खाजी बारहठ, जो समझाने आए थे, तो मर गए और मैं जीता रहा, इसी लज्जा से मारवाड़ में नहीं जाता। कहते हैं कि महाराजा ने उन्हें क्षमा कर दिया तथा उनके पुत्र किसनाजी को साथ ले गये और परगने सोजत का गांव पांचेटिया संवत् 1677 (सन् 1620 ई०) में उन्हें दिया। संवत् 1679 (सन् 1622 ई०) में परगने जोधपुर का 'हींगोला' नामक गांव और दिया गया।

9. **दुरसाजी और संत कवि रज्जब**—राघवदास कृत 'भक्तमाल' में आए एक प्रसंग के अनुसार दुरसाजी बादशाह से प्राप्त पालकी, सोने का अंकुश तथा सोने की छड़ी लेकर दिग्विजय के लिए निकले। उनका प्रण था कि जिसे शास्त्रार्थ में जीत लेंगे उसे पालकी में जोतेंगे, तथा जिससे हार जायेंगे उसे बादशाह से प्राप्त सम्मान-सामग्री दे देंगे। इसी प्रसंग में वे 'जयपुर' के पास 'सांगानेर' में आए और

संत कवि रज्जबजी से चर्चा करते हुए उन्होंने यह छंद कहा—

बावन अक्षर, सप्तस्वर, कंठ भाषा छत्तीस।
इनसे ऊपर जो कहे, सो जानूं कवि ईस॥

रज्जबजी ने इसके प्रत्युत्तर में निम्न दोहा कहा—

बावन अक्षर, सप्त स्वर, कंठ भाषा छत्तीस।
इनसे ऊपर हरिभजन, रज्जब कही हदीस॥

कहते हैं इस पर निरुत्तर होकर दुरसाजी ने समस्त सामग्री रज्जबीजी को भेंट कर दी तथा उन्हें अपना गुरु बना लिया।

10. **सिरोही के 'अखैराज' द्वारा सम्मान**—कहते हैं संवत् 1699 (सन् 1642 ई०) में जब दुरसाजी सिरोही गए तो अपने पौत्र 'महेस' को अफीम का सेवन करते देखकर क्रुद्ध हो गए और राव अखैराज के लिए कहा कि इसके हाथ में 'ठीकरा' (मिट्टी का पात्र) पकड़ाकर बड़ी कृपा की है। इस पर राव ने महेस को सिरोही के सिंहासन पर बैठाते हुए दुरसाजी से कहा कि हमारे तो यही 'ठीकरा' है। दुरसाजी बड़े प्रसन्न हुए और यह दान अस्वीकार कर दिया। बाद में अखैराज ने महेस को 'बिरायली' तथा 'ऊंड' नामक दो गांव और दो 'लाखपसाव' दिए।

11. **अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबंध**—दुरसा ने अनेक वीरों और नरेशों के विषय में काव्य-रचनायें कीं और उनसे दानादि भी प्राप्त किए। उन नामों में से कुछ अन्य प्रमुख व्यक्ति निम्न प्रकार हैं—

1. राव अमरसिंह गजसिंहोत
2. रावत मेघा
3. कुमार अज्जा
4. सोलंकी वीरमदे
5. महाराजा मानसिंह कछावा
6. रोहितासजी
7. देवीदास जैतावत
8. हाथी गोपालदास
9. महाराजा पृथ्वीराज राठौड़। इनके अतिरिक्त वे स्वरचित शताधिक डिंगल गीतों के अन्य अनेक नायकों के भी निकट संपर्क में रहे थे।

जिन विशिष्ट व्यक्तियों के उल्लेख दुरसाजी ने सम्मानपूर्वक किये हैं, वे हैं राव 'रायसिंह', 'गोपाल मांडणोत', तथा महाबतखान। इस प्रसंग का दुरसाजी के विषय में कहा छंद इस प्रकार मिलता है:

आधो अधराजियो राव सोजत में राखै
रायसिंघ कुळरूप जको बाबा कहि भाखै

मांडण रो गोपाल, बड़ो ठाकुर वरदाई
पलटी सिर पागड़ी, कह्यो निज मुख सूं भाई
मान सों खान महोवत मिलै, छत्रपती चाहै घणा
बड़भाग वाह पाळक वरण, तूं दुरसा मेहा तणा

"सोजत का राव रायसिंह, आधे राज्य का स्वामी-सा बना, सोजत में "बाबा" कहकर बतलाता है। मांडण का पुत्र गोपाल, जो वरदायक बड़ा ठाकुर है, पगड़ी बदल भाई बन गया है। मोहब्बत खान सम्मानपूर्वक मिलता है। दूसरे अनेक छत्रधारी राजा भी बहुत चाहते हैं। चारण वर्ण की पालना करने वाला मेहा का पुत्र दुरसा बड़ा भाग्यशाली है।"

विशिष्ट दान और जागीरें :

कहा जाता है कि दुरसाजी को नौ 'कोड़पसाव' मिले थे जिनमें से तीन बादशाह अकबर से, एक सिरोही के राव सुरताण से, एक बीकानेर के महाराजा रायसिंह से, एक महाराजा अमरसिंह से तथा एक 'जामनगर' के जाम सत्ताजी से मिला। इसके अतिरिक्त धूंदला (मारवाड़) पांचेटिया (मारवाड़), नातल कुड़ी (मारवाड़) हींगोला (मारवाड़), पेशुआ (सिरोही), झाकर (सिरोही) अूंड (सिरोही), साल (सिरोही), लूंगिया (सिरोही) 'दागला, (सिरोही), रायपुरिया (मेवाड़), दुठाड़िया (मेवाड़) और कागड़ी (मेवाड़) नामक गांव भी इन्होंने प्राप्त किए। इनके अतिरिक्त अनेक लाखपसाव तथा दूसरे पुरस्कार भी प्राप्त किए।

दुरसा के किए परोपकार एवं निर्माण :

दुरसा ने दानादि में प्राप्त अपार धन राशि से परोपकार के अनेक कार्य किए जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं :

(1) आबू पर्वत पर अचलेश्वर महादेव के मंदिर में दानादि के अवसर पर अपनी दो पीतल की मूर्तियां वहां स्थापित कीं, जिनपर उनके नामों का उल्लेख है। अनेक विद्वानों ने इसकी सत्यता प्रमाणित की है।

(2) अपने जागीरी गांवों—पेशुआ तथा पांचेटिया में 'दुरसोळाव' तथा 'किसनेळाव' नामक तालाव स्वयं के तथा छोटे पुत्र किसना के नाम से बनवाए।

(3) 'पांचेटिया तथा' 'हींगोला' में आवास-गृह बनवाए।

(4) पेशुआ में बालेश्वरी देवी का एक तथा पांचेटिया में दो मंदिर बनवाये।

(5) रायपुरिया तथा दुठाड़िया में बावड़ी, अरहट एवं कुए बनवाये।

(6) चारणों को कोड़पसाव का दान स्वयं दिया।

(7) पुष्कर में चारणों का एक मेला आमंत्रित कर चौदह लाख रुपए व्यय किए :

विरच्यो प्रबंध वरण्णरो, सूरज शशियर साख।
तठै खरच दुरसा तणा, लागा चवदा लाख।।

"सूर्य चंद्र की साक्षी से दुरसा ने चारणों का प्रबंध किया जिसमें चौदह लाख लगे।"

दुरसाजी की यह सांस्कृतिक परंपरा उनके पुत्रों-पौत्रों ने भी बनाई रखी। उनके पुत्र किसना के लड़के महेस ने दुरसाजी के समय में ही पांचेटिया में दो भव्य मंदिर बनवाकर उनमें दुरसाजी तथा किसनाजी की मूर्तियां भी स्थापित कीं।

दुरसा का स्वर्गवास

इस प्रकार एक लंबा और यशस्वी जीवन जीकर दुरसा ने पांचेटिया में देह-त्याग किया। कहते हैं कि जब इनके साथ इनकी स्त्रियां, पासवान तथा दासियां सती हो रही थीं तो राह चलती एक 'रैबारी' जाति की स्त्री के भी 'सत' चढ़ गया और वह यह कहते हुए इनके साथ ही सती हो गई कि ये मेरे पूर्व-जन्म के पति थे।

यद्यपि दुरसाजी की मृत्यु संवत् 1708 (सन् 1651 ई०) में मानी जाती है, पर मुंशी देवीप्रसाद ने पांचेटिया गांव में बनी इनकी छतरी पर उत्कीर्ण एक लेख का हवाला देते हुए इनकी मृत्यु संवत् 1699 (सन् 1642 ई०) से पूर्व मानी है।

दुरसा द्वारा अन्य लोगों के विषय में कहे गए तथा दूसरे लोगों द्वारा स्वयं दुरसा के लिए कहे गए कई रोचक प्रसंगों के छंद मिलते हैं, जिनमें से कुछ यहां उद्धृत किए जाते हैं :

1. बारहठ लक्खा द्वारा दुरसाजी के लिए कहा गया दोहा—

माय चराया केरड़ा, बाप फड़ाया कन्न।
दुरसो आढो भूलगो, वो अन है यो अन्न।।

"तुम्हारी मां ने बछड़े चराए और तुम्हारा बाप कान फड़वाकर संन्यासी बन गया। दुरसा, तुम भूल गए हो कि यह अन्न वही है, जो तुम्हें दुर्लभ था।"

2. दुरसा ने 'भीमा आसिया' नामक कवि द्वारा दिए गए एक भोज के अवसर पर उसकी प्रशंसा की तो उसके पुत्र किसना ने उन्हें मना किया। इस पर दुरसा ने निम्न दोहा कहा :

किसना संसारो कहै, बूठां मेहां वत्त।
भीमा नैं कहतां भलो, मोनैं बरजै मत्त।।

"बरसते मेह की बात तो सारा संसार ही कह उठता है। किसना, भीमा की प्रशंसा करते हुए मुझे रोक मत।"

3. पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'वेलि किसन रुकमणी री' नामक सुप्रसिद्ध काव्य की

प्रशंसा में निम्नलिखित छंद दुरसा द्वारा कहा बताया जाता है—

रुखमणि गुण लखण रूप गुण रचवण
वेल तास कुण करै बखांण।
पांचवो वेद भाखियो पीथल
पुणियो उगणीसमो पुरांण।।

"रुक्मिणी के गुणों और रूप का वर्णन करने वाले पृथ्वीराज के वेलि नामक ग्रंथ की रचना का कौन बखान करे ! उसने पांच वां वेद और उन्नीसवां पुराण ही कह डाला है।"

दुरसा को महाराणा प्रतापसिंह को प्रशस्ति में लिखित 'विरुद्ध छिहत्तरी' नामक ग्रंथ का रचयिता मानकर राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए अनेक लेखकों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। इस संदर्भ में उनके प्रामाणिक जीवन-वृत्त की खोज की जानी आवश्यक है, ताकि इतिहास का सत्य उजागर हो सके।

अध्याय 2

तत्कालीन राज और समाज

दुरसा आढ़ा ने अपनी अपेक्षाकृत लम्बी जीवनावधि में मुगल सम्राट् अकबर से लेकर शाहजहां तक के सुदीर्घ काल को देखा था। मुगल सम्राटों का यह समय मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास के लिए बड़ा महत्वपूर्ण समझा गया है। अकबर ने राजपूत वंशों से विवाह-संबंध स्थापित कर जिस नीति को जन्म दिया था, वह शाहजहां के शासन-काल तक सम्राटों के लिए बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई। शाहजहां के अंतिम दिनों में औरंगजेब ने उसमें बड़ा परिवर्तन कर दिया, जिससे राजपूतों और मुगलों के बीच दूरियां बढ़ती गई और उसका अंतिम परिणाम मुगल साम्राज्य के पतन के रूप में प्रकट हुआ।

राजस्थान अति प्राचीन काल से ही छोटे-छोटे राज्यों में बंटा रहा है। ये स्थानीय शासक केन्द्रीय सत्ता या प्रबल पड़ोसी से कुछ समय के लिए पराभूत होकर अधीनता स्वीकार तो कर लेते थे, पर समय पाकर पुनः अपना वर्चस्व जमाने की चेष्टा करते थे। गुजरात, मालवा और दिल्ली के प्रभुता-सम्पन्न सुल्तानों की सत्ता निरंतर परिवर्तनशील रहने के कारण भी विशेष लम्बी अवधि के लिए उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की गई। गुहिल, सोलंकी, परमार, प्रतिहार, चौहान आदि शक्तिशाली राजवंशों के अतिरिक्त मांडू, गुजरात और दिल्ली के सुल्तानों ने अपने-अपने समय में काल-विशेष के लिए अपना वर्चस्व अवश्य स्थापित किया, पर मुगलों से पूर्व ऐसी कोई सुनियोजित नीति नहीं अपनाई गई जिससे राजस्थान के स्थानीय शासक केन्द्रीय सत्ता से इस प्रकार जुड़ पाते। इन शासकों को संगठित कर पाना भी बड़ा दुष्कर था। राणा सांगा ने बाबर के विरुद्ध लड़े गए खानवा के युद्ध में इनका आह्वान अवश्य किया था, पर दुर्भाग्यवश उस युद्ध में विजयश्री मुगलों को मिली। मारवाड़ में भी राव मालदेव ने अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर शेरशाह के छक्के छुड़ा दिये थे, पर उसमें संगठन-शक्ति का अभाव था। मेवाड़ के राणा तो प्राचीन काल से ही हिन्दू नरेशों के अग्रगण्य रहे हैं, अतः उनका साथ देने में नरेशों ने जिस गौरव का अनुभव किया,

वह सम्मान अन्य किसी राजवंश को नहीं दिया जा सकता था। इस अहं के पीछे राजवंशों में परम्परागत वैमनस्य और स्वयं के जातीय गौरव की दुर्निवार भावना कारणभूत थी।

सम्राट् अकबर ने इस स्थिति का सही अनुमान लगाकर, तथा तत्कालीन स्थानीय शासकों की गिरती हुई आर्थिक स्थिति का लाभ लेकर, उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की नीति अपनाई। उसके साथ ही उसने सभी राजपूत शासकों एवं उनके कुमारों को शाही सेना में भर्ती कर उन्हें उपयुक्त मनसब भी प्रदान किए। इस नीति के दो लाभ हुए। एक तो यह कि वे नरेश अपने आपको सम्राट् के सम्बन्धी और निकटवर्ती मानने लगे, तथा दूसरा यह कि, अपने राज्यों से दूर शाही सेवा में निरंतर युद्धों में लगे रहने के कारण, वे अपने पड़ोसियों से लड़ने का अवसर नहीं ढूंढ़ पाए। मुगल हरम में गई राजकुमारियों ने अपने बाप-दादाओं को बादशाही कृपा के पात्र बनाने के यत्न किए और स्वयं नरेशों ने भी सुदूर के युद्धों में लूट के माल से अपनी माली हालत सुदृढ़ की। मनसबों के वेतन आदि भी पर्याप्य उदार होने के कारण उनके अधीनवर्ती सरदार, सामंत और बहुसंख्यक सैनिक भी सम्पन्न बनने लगे। यह सम्पन्नता मुगल काल में बने किलों, महलों, गढ़ियों, हवेलियों, बागों तथा अन्य अनेक आवास-गृहों आदि में परि-लक्षित होती है।

मुगलों द्वारा समस्त भारतवर्ष को ही नहीं अपितु अफगानिस्तान आदि मुस्लिम देशों को भी अपने अधीन करने की सतत चेष्टा में राजपूत वीरों ने बहुत बड़ा योगदान किया। राजपूत नरेशों में सम्राटों की कृपा प्राप्त करने की एक होड़ सी मच गई जिससे उन्होंने अद्भुत पराक्रम-प्रदर्शन करने में एक-दूसरे को पीछे धकेल दिया। राजपूतों का यह शौर्य मुगल साम्राज्य के विस्तार में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। दूसरी ओर राजपूत वीरों को भी, तलवार-तीर-भाले-कटार आदि परंपरागत अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त बंदूक, तोप, नाल आदि नए आविष्कारों में भी महारत हासिल हुई।

इस प्रकार लम्बे समय तक मुगल सम्राटों एवं उनके 'अमीरों-खानों-नवाबों' के निरंतर सम्पर्क में रहने के कारण देशी नरेशों ने मुगल शान-शौकत और जीवन-पद्धति को पर्याप्त मात्रा में अपना लिया। वेश-भूषा, अस्त्र-शस्त्र, बोल-चाल, युद्ध-कौशल, रहन-सहन, दरबारी शिष्टाचार आदि सभी पक्षों में मुगल प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगा था। अखिल भारतीय स्तर पर दूसरे नरेशों, अमीरों आदि से सम्पर्क होने, तथा विभिन्न प्रदेशों में सेवा करते रहने से भी, राजस्थानी नरेशों के दृष्टिकोणों में व्यापकता आई और अनुभव में वृद्धि हुई। तुलनात्मक दृष्टि से, अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न एवं समृद्ध प्रदेशों के इस सम्पर्क से जीवन के प्रति उनकी लालसा में भी वृद्धि हुई। मुगलों के वैभव में भागीदार

होने के लिए उनकी कृपाओं की याचना करते हुए देशी नरेशों ने प्रभावशाली मुगल अमीरों को भेंट, घूस आदि देना भी प्रारंभ किया।

इधर उनके अपने राज्यों में भी उनकी प्रभुसत्ता में वृद्धि हुई। जो सामंत पहिले राज्य में बराबर के भागीदार बनने का दावा रखते थे, तथा समय-समय पर अपने वर्चस्व का प्रदर्शन भी करते थे, वे केन्द्रीय सत्ता के भय से राज्य के प्रति अधिक स्वामिभक्त बनने लगे। पर स्वयं निरंतर शाही सेवा में रहने के कारण राज्य की देख-रेख प्रायः वैश्य-वर्ग के दीवानों, मुसाहिबों के हाथों में दे दी गई, जिससे धीरे-धीरे राज-परिवारों के घरेलू मामले भी उक्त वर्ग की दखलंदाजी के विषय बनने लगे। इस निहितस्वार्थ तत्त्व ने राजकीय सत्ता एवं कोष के बल पर अपने प्रभुत्व और समृद्धि में वृद्धि की तथा राज्यों की शोचनीय आर्थिक स्थिति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

राजघरानों के अंतःपुर आंतरिक कलह से ग्रस्त होने लगे। पहिले सीमित संख्या में ही विवाह होने तथा परम्परागत मर्यादाओं का निर्वाह होते रहने के कारण, अंतःपुर में जो अपेक्षाकृत शांति थी वह मिटने लगी थी। इसका एक कारण तो मुगल शासकों द्वारा प्रोत्साहित बहुपत्नीत्व की प्रथा थी, जिससे राजस्थानी नरेशों ने भी अनेक विवाह करने की परम्परा को बहुत अधिक बढ़ा दिया, जिसका स्वाभाविक परिणाम आंतरिक कलह में परिलक्षित हुआ। दूसरे, उत्तराधिकार को लेकर भी ये संघर्ष अधिक खिंचते गए। उत्तराधिकार की जो व्यवस्था, भारतीय धर्म-शास्त्र के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र के लिए की जा रही थी, उसमें भी केन्द्रीय सत्ता का हस्तक्षेप बढ़ता गया और टीके का दस्तूर बादशाह के निर्णय के ही वशीभूत हो गया। देशी नरेशों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए अपनी चहेती रानियों के पुत्रों को येनकेन प्रकारेण उत्तराधिकार दिलाने के प्रयत्न किए। ऐसे प्रयत्नों में मातृपक्ष के राजघराने भी उलझने लगे जिससे केन्द्रीय राजनीति में भी एक से अधिक दल बनने लगे।

मदिरा, अफीम, शिकार और स्त्रियों के बढ़ते आकर्षण ने राज-परिवारों के पुरुषों को शिक्षा और संस्कृति के विषयों से पृथक् सा ही रखा। विरुदगायकों की चाटुकारिता से प्रभावित होकर मुक्तहस्त से दान देने में उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति का सही अनुमान तक नहीं लगाया, जिससे वे निरंतर ऋणग्रस्त रहने लगे अथवा दूसरी प्रकार से तंगी का अनुभव करने लगे।

रानियां, महारानियां, राज-मातायें आदि समयानुसार अपने घटते वर्चस्व के प्रतिक्रियास्वरूप, धर्म-कर्म में आस्थावान होती गईं और व्रत-उपवास, कथा-भागवत, भजन-पूजन आदि में अपना समय बिताने लगीं। इसका एक शुभ परिणाम उन बहुसंख्यक मंदिरों के रूप में प्रतिफलित हुआ जो राज-परिवारों की महिलाओं ने समय-समय पर बनवाये। इस होड़ में राजाओं की पासवानें, पड़-

दायतें और वांदियां भी पीछे नहीं रहीं। इन्हीं महिलाओं की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण संत एवं भक्ति साहित्य की बहुत बड़ी सामग्री राजकीय पोथीखानों में उनके गुटकों के रूप में सुरक्षित रह पाई। नाथ-पंथ, निर्गुणी संतों तथा निम्बार्क एवं वल्लभ-संप्रदायों को राजपरिवारों से निरंतर प्रश्रय इन्हीं महिलाओं के कारण प्राप्त हुआ। जैन धर्मावलम्बी वैश्य वर्ग के दिन-प्रतिदिन बढ़ते प्रभाव के कारण नरेशों ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में भी बाधा नहीं डाली और बन पड़ता सहयोग भी दिया। हिन्दू राज्यों की प्रश्रय की यह नीति पिछली कई शताब्दियों से चली आ रही थी। मुगल सत्ता के जड़ पकड़ जाने के कारण मस्जिदों, दरगाहों तथा मुसलमानों के अन्य धार्मिक स्थानों को अधिक सम्मान, श्रद्धा और महत्त्व मिलने लगा। पर यह सब होते हुए भी बहुसंख्यक हिन्दू पर्व-त्यौहार—दशहरा, दीवाली, होली, तीज, गणगौर आदि ही राजकीय उत्सव बने रहे जिनमें स्वयं नरेश लवाजमे के साथ सम्मिलित होते। राजकीय दरबार भी ऐसे ही अवसरों पर आयोजित किए जाते। अकबर ने भी धार्मिक सहिष्णुता की नीति ही अपनाई और सभी धर्मों को बिना किसी रोक-टोक के अपनी मर्यादाओं का पालन करने दिया। स्वयं उसकी विवाहिता हिन्दू रानियां भी हरम में अपने देवी-देवताओं की पूजा-आराधना कर सकती थी। जहांगीर तथा शाहजहां ने भी इस नीति में कोई अन्तर नहीं आने दिया, जिससे धार्मिक कटुता उभरने नहीं पाई।

आलोच्य काल में चारण कवियों का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और उन्हें 'लाख पसाव', 'कोड़ पसाव' आदि दान दिए जाने लगे जिनमें गांवों के 'सासण' भी सम्मिलित थे। इससे ब्राह्मण समाज को दिए जाने वाले दानों में कमी आई और वह केवल धार्मिक कृत्यों की प्रतिष्ठार्थ दिए गए दानों के ही अधिकारी रह गए। काव्य, साहित्य, आयुर्वेद, ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, संगीत आदि विद्याओं एवं कलाओं को सामान्य रूप से राज्याश्रय तो था, पर चारण कवियों के विरुद-काव्य का प्रचलन अधिक होता गया और वे राजपूत नरेशों-सामंतों-ठाकुरों के साथ भाईचारे का दावा करने लगे। इसके पीछे कुछ चारणी महिलाओं की मान्यता का भी प्रभाव था जिन्हें शक्ति के अवतार-रूप में प्रचारित एवं प्रतिष्ठापित किया गया। इन देवियों की सिद्धियों और वरदानों की अनेक गाथायें तत्कालीन समाज में बड़े विश्वास और श्रद्धा के साथ कही-सुनी जाने लगी थीं। साधारण गृहस्थ परिवारों में जन्मी इन चारणी देवियों की एक लम्बी परंपरा चारण समाज में चली आई है और विज्ञान के इस युग में आज भी ऐसी देवियां श्रद्धा की पात्र समझी जाती हैं। प्रायः सभी राजपूत वंशों में एक-न-एक ऐसी किसी चारणी देवी की मान्यता चली आई है। 'चारणों' के इस अभ्युदय से उन्होंने अपने आपको राजपूत समाज के रीति-रिवाजों और अन्य सभी शिष्टा-

चारों में ढाल लिया और स्वयं को राजपूतों के समान स्तर पर समझना प्रारंभ कर दिया। विवाहादि अवसरों पर दान के लिए हठ करने और सामूहिक सत्याग्रह, धरने आदि द्वारा राजपूतों को तदर्थ विवश करने की नीति भी उन्होंने अपनाई। उनके अनुकूल नहीं बनने वाले राजपूतों की निन्दा करने की चेष्टायें भी की गईं। चूंकि चारण आजीविका के लिए पर्याप्त भ्रमण-शील रहते थे, अतः उनके जन-सम्पर्क से निन्दा-प्रसंगों को बढ़ावा मिलने के भय से राजपूतों को उन्हें तुष्ट करने को भी बाध्य होना पड़ता था। लेकिन ऐसे चारण विद्वानों की भी कमी नहीं थी जो सत्य, धर्म, शौर्य और दूसरे वीरोचित एवं क्षत्रियोचित गुणों के उत्कर्ष को प्रोत्साहित करते थे। ऐसे विद्वानों को सभी पूर्ण सम्मान की दृष्टि से देखते थे। ऐसे ही कुछ चारण कवि युद्धों में भी राजपूतों का साथ देते थे तथा अवसर पड़ने पर कंधे से कंधा लगाकर स्वयं युद्ध भी करते थे। गौ-ब्राह्मण-अबला को अवध्य मानने वाले प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसरण पर चारण भी अवध्य समझे जाते थे। अतः पता पड़ने पर या तो क्षत्रिय स्वयं इन्हें जीवित छोड़ देते थे अथवा कभी-कभी ये स्वयं प्राण-याचना करके बच जाते थे।

हरेक ऊंची जाति के यहां याचना करने वाली कोई-न-कोई नीची जाति की परंपरा बनी रही है। इसलिए चारणों की भी अपनी याचक जातियां खड़ी हुईं। जिस प्रकार चारण राजपूतों के यहां याचक बनकर दान, नेग वगैरह लेते थे, उसी प्रकार चारणों के यहां 'मोतीसर' तथा 'रावल' जाति के लोग याचक बनकर आते थे। ये याचक भी चारणों की तरह काव्य-रचना करते थे। कई 'मोतीसर' ऊंचे दर्जे के कवि हो गए हैं। 'रावल' लोग भी अच्छी रचनायें कर पाते थे, क्योंकि डिंगल काव्य कुछ रूढ़ियों में बंधकर रह गया था। इन मोतीसरों, रावलों को चारण लोग भी उसी प्रकार दानादि से प्रसन्न करते थे जिस प्रकार वे स्वयं राजपूतों से प्राप्त करते थे। जो सम्मान चारणों का राजपूत घरों में होने लगा था वैसा ही चारण मोतीसरों तथा रावलों को देने लगे थे। इससे भी चारणों द्वारा राजपूत वर्ग की समानता करने की प्रच्छन्न भावना प्रकट होती है।

चारणों के समकालीन ही, अपितु कुछ अर्थों में उनकी पूर्ववर्ती भी, एक और काव्यकर्मी जाति थी, भाटों-रावों-कवीश्वरों की। ये लोग अपनी रचनायें ब्रजभाषा से मिलती-जुलती भाषा में करते थे, जो पिंगल के नाम से जानी जाती थी। इनकी प्रतिस्पर्धा में चारणों की भाषा 'डिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। डिंगल-पिंगल का साहित्यिक द्वन्द्व भाट-चारणों के व्यावसायिक संघर्ष के कारण चला। पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यों में भाटों का प्रभुत्व अधिक रहा जब कि उत्तरी एवं पश्चिमी क्षेत्र में चारणों का। कालांतर में चारणों ने भाटों की तुलना में अपना वर्चस्व बढ़ा लिया।

वैश्य वर्ग में एक और समुदाय प्रभावशाली बनने लगा था जो व्यवसाय करने के अतिरिक्त शासकों के भी निकट सम्पर्क में था। ये लोग प्रायः जैन धर्मावलम्बी थे और 'ओसवाल' के सामान्य नाम से जाने जाते थे। इनमें से अधिकांश की उत्पत्ति राजपूत कुलों से मानी जाती है। इनका रहन-सहन, वेश-भूषा, उठ-बैठ, बोल-चाल आदि सभी उच्चकुलीन राजपूतों के समान था। जैन धर्म में दीक्षित होने के कारण मांस-मदिरा का सेवन इनके लिए वर्जित था। देशी रियासतों में ये लोग उच्च पदासीन रहते थे। चारण लोग इनके विरुद भी बखानते थे। दूसरी चारणेतर जातियां भी इनकी याचक थीं। वैश्य होते हुए भी ये लोग युद्धों में भाग लेते थे और सेनानायकत्व भी करते थे।

इस सामंती और पूंजीवादी ढांचे के अनुरूप ही अन्य मध्यवित्त के लोग अपने आपको ढालने का प्रयत्न करते थे। पुरोहित वर्ग भी सामंतों और धनिकों की कृपा का आकांक्षी बना रहता था। अध्ययन-अध्यापन, कर्म-कांड, भजन-पूजन, दान-दक्षिणा आदि के द्वारा तो वह अपनी रोटी का ही जुगाड़ कर पाता था। कृषकों और कर्मकरों के बहुसंख्यक वर्ग की दशा शोचनीय ही थी। उन्हें उनके श्रम का समुचित प्रतिफल नहीं मिल पाता था। आये वर्ष पड़ने वाले अकालों से कृषक वर्ग की आर्थिक स्थिति कभी स्थायी रूप से सुदृढ़ नहीं बन पाती थी। सिंचाई के अभाव में वर्षा के भरोसे ही अधिकांश कृषि-कार्य चल पाता था। कृषकों तथा कर्मकरों से बेगार लेने की प्रथा पूरे जोर में थी। उच्च कुलों में दास-दासियों के रूप में अथवा जीवनपर्यन्त मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिए विवश परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही थी।

राजपूत वर्ग की देखादेखी दूसरे सम्पन्न वर्ग भी उपपत्नियां और रखैलें रखते थे जिससे अवैध संतानों का एक नया वर्ग खड़ा हो गया था। 'दरोगा' या 'गोला' कहे जाने वाले ये लोग पीढ़ियों तक दासों के रूप में दहेज आदि में दिये-लिये जाने लगे थे। उनके साथ अमानुषिक व्यवहार की घटनायें भी घटित होती थीं। राजपूतों की विधवा स्त्रियों को जब सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से सती के रूप में जलने को विवश होना पड़ता था तो अनेक बार इन दास-दासियों को भी जला दिया जाता था। 'पातरों' का एक और वर्ग भी था जो राजाओं के भोग-विलास के लिए भर्ती की जाती थी। इनके नए नामकरण श्रृंगारिक भावना से किए जाते थे, यथा—रंगराय, रूपरेखा, रसतरंग आदि। इनके समान ही 'गायणियां' भी भर्ती की जाती थीं जिनका काम राज-परिवार के लोगों का गायन के द्वारा मनोरंजन करना था। पर अनेक बार इन गायणियों पर भी राजा की नजर पड़ जाती तो ये उपपत्नियों की तरह रहने लगतीं। असल में यौन संबंधों को लेकर राजाओं के लिए कोई रोक-टोक नहीं रह गई थी। वे किसी भी जाति या वर्ग की स्त्री को बिना हिचक के अन्तःपुर में डाल सकते थे अथाव

किसी प्रकार अपनी यौन-तुष्टि के लिए विवश कर सकते थे। ऐसी बहुसंख्यक पातरें व अन्य दासियां भी मृतक राजा के साथ जला दी जाती थीं।

अन्तःपुरों में काम करने के लिए मुगल हरमों के अनुकरण पर 'नाज़र' भी रखे जाने लगे थे जो समय पाकर उच्च पदों पर भी आसीन हुए। कुमारावस्था में ही बालकों को 'नाज़र' बनाने के उद्देश्य से नपुंसक बनाने का व्यवसाय चल पड़ा था जिसे रोकने की बहुत कुछ चेष्टा स्वयं जहांगीर ने भी की थी। स्वामि-भक्ति के प्रदर्शनार्थ ऐसे नाज़र भी चिताओं में जलाये गए, ऐसे दृष्टांत मिलते हैं।

अनियंत्रित भोग-विलास के इन कार्यों के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन जुटाने के लिए जनसाधारण पर भांति-भांति के कर एवं लाग-बाग आरोपित किए गए जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति और अधिक शोचनीय हो गई। राजा की तरह ही छोटे सामंत भी इसी प्रकार का आचरण करने को प्रेरित हुए और छोटे-छोटे जागीरी गांवों में स्थिति और भी बदतर हो गई। अधिक आवश्यकता होने पर छुटभाई लोग गांवों को लूटने में भी नहीं हिचकते थे और ऐसा करने को वे क्षत्रिय-धर्म का पालन कहकर 'ग्रास' की संज्ञा देते थे। युद्ध, राज-परिवार में विवाह, पुत्र-जन्म आदि विशिष्ट अवसरों पर विशेष प्रकार के अन्य कर तथा लाग-बागें भी ली जाती थीं।

उच्च एवं निम्न वर्ग के बीच इतने विशाल अंतर को देखते हुए जनसाधारण के शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक विकास की कल्पना भी नहीं हो सकती थी। शिक्षा की सुविधा भी शहरी मध्यवित्त के लोगों तक ही सीमित थी। तथाकथित उच्च एवं कुलीन वर्ग के लिए तो मनोवांछित शैक्षणिक व्यवस्था हो ही सकती थी, पर अन्य लोग इससे वंचित ही रहते थे। उन्हें जीवन-यापन के लिए परंपरागत पारिवारिक व्यवसायों में ही लगना पड़ता था। स्त्रियों की शिक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता था।

सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्य, कला, संगीत एवं हस्त-शिल्प आदि भी उच्च कुलीन लोगों के मुखापेक्षी थे। संगीत-नृत्य को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। पेशेवर वेश्यायें ही इसे धंधे के रूप में करती थीं तथा कुलीन लोग भी उनके यहां जाते थे। राजघरानों में वेश्याओं की पूछ थी। अन्य धार्मिक लोग भी महफिलों, उद्यान-गोष्ठियों आदि का आयोजन करते जिनमें वेश्यायें भाग लेतीं। संगीत की रक्षा का सच्चा श्रेय धार्मिक संप्रदायों को है जिनके यहां भगवद्-भक्ति के निर्गुण अथवा सगुण पद,साखियां आदि गाई जाती थीं जो अनेक राग-रागिनियों में निबद्ध होती थीं। धनिक लोग ही हवेलियों, छतरियों आदि में चित्रकारों को लगाकर भित्ति-चित्र बनवाते अथवा प्रेम-कथाओं के गुटकों में विविध प्रकार के

चित्र बनवाते। ढोला मारू, बींझा-सोरठ, नागजी-नागमती, जलाल-बूबना आदि बहुसंख्यक प्रेम-कथाएं इस युग में चित्रित हुईं। ये गुटके उच्चकुलीन लोगों में एक-दूसरे को भेंट में दिए जाते थे। रामायण, महाभारत, गीत-गोविंद, कृष्ण लीला, रासमंडली, बारहमासा, राग-रागिनी आदि के बहुसंख्यक चित्र भी धनिकों के प्रश्रय में बने। इसी प्रकार वस्त्र, अलंकरण, युद्ध-सामग्री आदि की अनेकविध वस्तुएं शिल्पियों के हाथों से सुसज्जित हुईं जिन्हें समर्थ लोग ही खरीद पाते थे।

समाज धार्मिक अंधविश्वासों एवं परंपरागत रूढ़ियों से घिरा हुआ तो था ही, पर उन्हें चिकित्सा, शिक्षा, संचार-साधन एवं आवागमन के लिए भी आदिम तरीकों पर अवलंबित रहना होता था। आवागमन एवं संचार के अभाव में पारस्परिक विचार-विमर्श भी संभव नहीं था और ग्रामीण जीवन अपने स्तर पर पृथक् इकाई के रूप में ही चल पाता था। इसके लिए पड़ोस, गांव और आस-पास के लोगों का पारस्परिक सहयोग एवं विश्वास ही एकमात्र संबल था। अतः जातीय पंचायतों का प्रचलन था और वे ही सभी प्रकार के मामले निपटा देती थीं। गांवों के मुखियाओं के पास भी कम ही मामले आते। इस प्रकार स्वशासन की आत्मनिर्भरता होने के कारण ऐसे कामों में राजकीय दखल नाममात्र का ही रह पाता था।

चोरी-डाके की घटनायें अपेक्षाकृत कम हो पाती थीं क्योंकि सुरक्षा का दायित्व राज्य का सबसे बड़ा कार्य था। जिस राजा या सामंत के यहां सुरक्षा नहीं हो पाती उसे छोड़कर लोग अन्यत्र जा बसते थे। आर्थिक समृद्धि के लिए राजा एवं सामंत, वणिक् वर्ग एवं काश्तकारों को सुरक्षा का भरोसा दिलाकर अपने यहां बसने के लिए आमंत्रित करते थे।

स्थानीय राजस्व एवं अन्य करों के अतिरिक्त भ्रमणशील व्यापारियों-'बनजारों' से एवं राह चलने वाली 'कतारों' से निर्धारित मात्रा में कर लिया जाता था। मुख्य व्यापार-मार्गों पर पड़ने वाले राज्यों में तो आमदनी अच्छी मात्रा में हो जाती थी। घोड़ों के व्यापारी भी पर्याप्त कर देते थे। एक राज्य से दूसरे राज्य में यात्रा करने पर आम लोगों पर कोई पाबंदी नहीं थी। हां, उन्हें संबंधित राज्यों के चुंगी-नाका आदि के करों को अवश्य देना होता था।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि निरंतर युद्ध-भय में रहते हुए भी जन-साधारण में कभी कोई बड़े पैमाने पर भगदड़ की घटनायें नहीं होती थीं। जन-जीवन प्रायः शांत एवं सामान्य रहता था। लोग समूहों में रहते थे और सामूहिक भावना की आवश्यकता का अनुभव करते थे।

जब कि राजस्थान के बहुसंख्यक राज्यों में न्यूनाधिक यही स्थिति थी, मेवाड़

जैसे विद्रोही राज्य में अधिक जागरूकता और सजगता होना स्वाभाविक था। फिर भी नागरिक एवं ग्रामीण जीवन इन परिस्थितियों का अभ्यस्त होने के कारण उन्हें भय की निरंतरता आक्रांत नहीं कर पाती थी।

राज और समाज को ऐसी स्थिति में तत्कालीन चारण समाज के सम्मान्य व्यक्ति और एक प्रतिभासम्पन्न कवि के रूप में दुरसा आढ़ा के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन करना ठीक होगा।

अध्याय 3

कृतियों का विवरण

मध्यकालीन चारण कवि वीर तथा भक्ति रस की रचनाओं को प्रमुखता देते थे। युद्धवीरों, दानवीरों तथा सतियों की प्रशंसा में कहा गया यह साहित्य हजारों रचनाओं के रूप में मिलता है। उनके अतिरिक्त नीति तथा भक्ति-साहित्य में भी उनको विशेष रुचि थी। उपर्युक्त सभी प्रकार की रचनाएं प्रायः सभी सिद्धहस्त कवियों ने की हैं। जिस प्रकार वे काव्य-नायकों के आदर्श गुणों का बखान करते थे उसी प्रकार उनके चारित्रिक अवगुणों तथा दुष्कृतों की भी निन्दा करते थे। उनके प्रशंसात्मक काव्य को 'सर' तथा निन्दात्मक को 'विसर' कहा जाता है। 'विसर' काव्य का प्रधान लक्ष्य भी प्रताड़ना के अतिरिक्त उनकी सद्बुद्धि को जागृत करना ही होता था। ऐसे काव्य को 'चारण चाबुक' के नाम से भी कहा गया है।

चारणों की इस काव्य की भाषा को 'डिंगल' कहा गया है। अधिकतर विद्वानों की सम्मति में यह नामकरण छंदशास्त्र के लिए प्रचलित परंपरागत नाम 'पिंगल' पर बनाया गया था। पिंगल ऋषि को छंदशास्त्र का प्रणेता मानने के कारण समूचे छंदशास्त्र को ही 'पिंगल' के नाम से जाना जाने लगा था। चारणों से पूर्व संभवतः सभी प्रकार का काव्य पिंगल द्वारा वर्णित छंदों में ही रचा जाता था। चूंकि चारणों ने स्वयं की अनेक छन्द-विधाओं का भी आविष्कार कर लिया था, अतः उन्होंने अपने छंद-शास्त्र को 'डिंगल' नाम दे दिया। धीरे-धीरे यह अभिधान छंदशास्त्र से हटकर 'भाषा' के लिए प्रयुक्त होने लगा। व्रजभाषा में लिखने वाले कवियों की भाषा का नाम पिंगल छंदों के प्रयोग के कारण 'पिंगल' प्रसिद्ध हुआ तो चारणों ने अपनी राजस्थानी भाषा की काव्य-शैली का नाम 'डिंगल' रख लिया। इस प्रकार व्रजभाषा की वह काव्य-शैली जो राजस्थान में व्यवहृत हुई 'पिंगल' के नाम से जानी जाने लगी तथा राजस्थानी भाषा में चारणों द्वारा विशिष्ट शैली एवं छंदों में लिखा जाने वाला काव्य 'डिंगल' कहलाया। 'पिंगल' और 'डिंगल' की यह स्पर्द्धा सोलहवीं सदी के पहले से ही दिखाई देने लगी थी। सत्रहवीं सदी के भक्त कवि सायां भूला ने अपने 'नागदमण' नामक काव्य में 'उठै डींगळां पींगळां रा अंगारा'

कहकर इस द्वन्द्व की ओर संकेत किया है।

तत्कालीन चारण कवि 'पिंगल' के छंद शास्त्र से तो परिचित थे ही पर उन्होंने कुछ अन्य छंदों का भी आविष्कार किया जिन्हें 'गीत' के व्यापक नाम से जाना जाता है। ये 'गीत' गाये नहीं जाते थे, अपितु एक विशेष लय में निर्दिष्ट पद्धति से पढ़े जाते थे। इसलिए इन्हें गेय गीत नहीं समझा जाना चाहिए। प्रत्येक वीर अपने सुयश के लिए 'गीत' कहे जाने की इच्छा रखता था। कीर्ति के प्रतीक 'गीतड़ा कै भींतड़ा' (गीत या वास्तु-निर्माण) मानने वाले भी गीतों को ही प्रमुखता देते थे, क्योंकि चूने-पत्थर के निर्माण तो समय पाकर धराशायी हो जाते हैं, पर कीर्ति अमर रहती है—

"कीरत महल अमर कमठाण"

(कीर्ति रूपी महल कभी न मिटने वाले निर्माण हैं)

डिंगल छंदों में पिंगल के दूहा, सोरठा, छप्पय, भुजंगी, अड़िल्ल, कुंडलिया, झूलणा, तोटक, पद्धरि आदि तो सम्मिलित हैं ही पर एक सौ से ऊपर अन्य गीत छंद हैं जिनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं—

साणोर, वेलियो, सुपंखरो, म्रगभंप, चितहिलोळ, प्रहास, सावभड़ो, नीसाणी, पालवणी, गजगत, चोटीबंध, घड़उथळ, ढोल आदि। पिंगल छंदों की ही भांति ये मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के होते हैं। गीतों के नामकरण से उनकी ध्वनिगत एवं गठनात्मक प्रक्रिया का बोध होता है। मृग की छलांग के समान छोटी पंक्तियों के बाद बड़ी पंक्ति आने के कारण 'म्रगभंप' नाम सार्थक हुआ। इसी प्रकार ढोल की ध्वनि का आभास देने के कारण गीत का नाम ही 'ढोल' रख दिया गया। इसी प्रकार अन्य अनेक गीतों के नामकरण की विवेचना की जा सकती है। छंदशास्त्रियों ने डिंगल के सभी छंदों के लक्षण-उदाहरण देकर तथा साथ ही काव्य-शास्त्र के अन्य पक्षों की भी यत्किंचित् विवेचना प्रस्तुत करते हुए लक्षण-ग्रंथों की रचना की है। अभी तक ऐसे डेढ़ दर्जन ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। इन सभी में 'गीतों' की संख्या में बड़ा अंतर है। रघुनाथ रूपक (कवि मंछकृत), रघुवरजस प्रकास (किसना आढा कृत), हरि पिंगल (जोगीदास कृत) लखपत पिंगल (हमीरदान कृत), कविकुल बोध (उदयराम कृत), पिंगल शिरोमणी (कुसललाभ कृत) तथा छंद रत्नावली (हरिराम निरंजनी कृत) के नाम उल्लेखनीय हैं।

दुरसाजी ने अनेक डिंगल छंदों में रचनायें की हैं जिनसे छंद-शास्त्र संबंधी उनकी बहुज्ञता का आभास होता है। मध्यकाल में जैन यति बड़े विद्याव्यसनी हुआ करते थे। उन्हें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के साथ-साथ देश-भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान होता था। साहित्य-शास्त्र के अतिरिक्त वे ज्योतिप, वैद्यक, सामुद्रिक, तंत्र-मंत्र-यंत्र आदि विद्याओं में भी निष्णात हुआ करते थे। एक किंवदन्ति के अनुसार दुरसाजी की शिक्षा एक जैन यति के यहां हुई थी। इसलिए उनका अनेक

विद्याओं एवं कलाओं में पारंगत होना समझ में आता है। और इन सबसे ऊपर, चारण-समुदाय से पैतृक परम्परागत काव्य-कला भी उन्होंने अवश्य सीखी होगी।

यहां दुरसाजी की रचनाओं का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त छंदों, विषय-वस्तु तथा संबंधित ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं के विवरण देने का प्रयत्न किया जा रहा है—

(1) **विरुद छिहत्तरी**—महाराणा प्रताप की प्रशंसा में कहे गए छिहत्तर सोरठों का इसमें संकलन किया गया है। 'सोरठा' छंद दोहे का उलटा होता है। दोहे में दूसरे तथा चौथे चरणों की तुकें मिलती हैं जब कि सोरठे में पहले व तीसरे की। संख्यावाचक कृतियां साहित्य में बहुतायत से मिलती हैं। सतसई, शतक, बावनी, बहत्तरी, छत्तीसी, बत्तीसी, पच्चीसी आदि नामों से अनेक रचनायें प्राप्त हैं। 'छिहत्तरी' भी इसी प्रकार का नामकरण है।

कई विद्वानों ने हाल ही में इस रचना के 'दुरसा' कृत होने में संदेह व्यक्त किया है और इसे 'अूमरदान लाळस' कृत माना है। इसका एक कारण यह भी बताया गया है कि इसकी कोई प्राचीन प्रति उपलब्ध नहीं है। 'देबारी' नामक घाटी-द्वार का उल्लेख—'देबारी सुर द्वार, अड़ियो अकबरियो असुर'—होने के कारण भी इसे समसामयिक रचना नहीं माना गया है, क्योंकि उन आलोचकों की राय में उस समय 'देबारी' का अस्तित्व नहीं था। वे सोरठों में आए हुए 'दुरसा' के उल्लेख के लिए मौन हैं, जो विचारणीय है। एक उल्लेख निम्न प्रकार है—

करै खुसामद कूर, करै खुसामद कूकरा।
'दुरस' खुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ॥

यहां 'दुरस' संभवतः 'दुरसा' ने अपने लिए ही लिखा है। हो सकता है किसी कवि ने चलाकर ऐसे नामोल्लेख किए हों ताकि संशय की गुंजायश नहीं रहे। एक शंका का विषय यह भी है कि 'अूमरदान' ने भी सन् 1900 ई० में प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिखते हुए इसकी प्राप्ति के स्रोत को प्रच्छन्न ही रखा है। अूमरदान की रचना-शैली, यथा अतिशय निंदात्मक शब्दों का प्रयोग—अकबरियो, तुरकड़ा, कूकरा आदि, और देश, माताभूमि आदि के अपेक्षाकृत आधुनिक विचार भी इस शंका को पुष्ट करते हैं। दुरसा की प्रौढ़ मध्यकालीन भाषा व शैली से इस भाषा व शैली का साम्य बड़ी कठिनाई से भी नहीं बैठाया जा सकता। इन परिस्थितियों में इस प्रश्न पर निर्णयात्मक ढंग से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय में एक दन्तकथा भी है कि मारवाड़ का एक कर्मचारी 'बच्छराज सिंघवी' किसी कारणवश राज्य से निष्कासित कर दिया गया। वह अूमरदान लाळस से महाराणा प्रताप विषयक कुछ सोरठे लिखवा कर मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा फतहसिंह के पास गया और वह प्रकाशित पुस्तक महाराणा को भेंट की। कहते हैं इस पर महाराणा ने उसकी दो सौ रुपये माहवार की पेंशन कर दी।

इस कृति के प्रारंभ व अंत के कुछ सोरठे इस प्रकार हैं—

अलख पुरुष आदेश, देश बचाय दयानिधे।
वरनन करूं विशेष, सुहृद नरेश प्रतापसी ॥
गढ अूंचो गिरनार, नीचो आबू ही नहीं।
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी।
आभा जगत उदार, भारतवरस भवांनभुज।
आतम सम आधार, पीतम राण प्रतापसी ॥
कवि प्रारथना कीन, पंडित हूं न प्रवीन पद।
दुरसो आढो दीन, प्रभु तव सरण प्रतापसी ॥

हे अलख पुरुष, आपको प्रणाम है। हे दयानिधि, देश के प्रिय नरेश प्रतापसिंह की रक्षा करें। मैं उन्हीं के यश का विशेष वर्णन करता हूं। गिरनार का गढ़ अूंचा है, पर आबू भी नीचा नहीं है (अतः) अकबर यदि पाप का अवतार है तो प्रताप भी पुण्य का अवतार है। भारतवर्ष आपकी भुजाओं के बल पर ही स्थित है, आप अपनी उदारता से संसार को आलोकित करते हैं। अतः, हे महाराणा, आप ही पृथ्वी पर आत्मा के समान आधार वाले हो। कवि प्रार्थना करता है कि मैं 'दुरसा आढा' नाम का दीन न तो पंडित हूं और न चतुर ही। हे प्रभु, प्रतापसिंह, मैं आपकी ही शरण हूं।

इन सोरठों में अनेक कल्पनाओं के माध्यम से अन्य नरेशों की तुलना में प्रताप की विशिष्टता बताते हुए उनकी स्वतंत्र भावना की प्रशस्ति और अकबर की निन्दा की गई है।

(2) **राव सुरताण रा झूलणा**—सिरोही के राव सुरताण दुरसा के आश्रयदाता थे। युद्ध-क्षेत्र से घायल अवस्था में इन्हें पालकी में ले जाकर सुरताण ने ही इनकी चिकित्सा करवाई थी तथा इन्हें अपना 'पोलपात' (प्रतोली पात्र —जो द्वार पर खड़ा होकर विरुद पाठकरे और विशिष्ट अवसरों पर दान—'नेग'—ले।) नियुक्त किया था। सुरताण से इन्हें 'कोड़ पसाव' (एककरोड़ के मूल्य का दान—'प्रसाद') तथा गांव भी प्राप्त हुए थे। राव सुरताण भी अपनी वीरता तथा स्वातंत्र्य-भावना के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। ये संवत् 1628 (सन् 1571 ई०) में सिरोही की गद्दी पर बैठे थे। इन्होंने जीवन में 51 युद्ध किए थे और अनेक बारहार कर इन्हें राज्य-त्याग भी करना पड़ा था। सम्राट् अकबर ने सीसोदिया जगमाल को इनके विरुद्ध भेजा था। दत्ताणी नामक स्थान पर हुए उस युद्ध में सुरताण ने बड़ी वीरता दिखाई थी। इनकी मृत्यु संवत् 1667 (सन् 1610 ई०) में हुई। दुरसाजी ने सुरताण के लिए झूलणे (नीसांणी), कवित्त (छप्पय) आदि अनेक छंदों की रचनायें की हैं।

'झूलना' छंद के दो प्रकार बताते हुए 'छंद प्रभाकर, के रचयिता जगन्नाथ-प्रसाद ने इनके लक्षण 29 मात्राओं (7—7—7—5 गुरु लघु अंत) तथा 37

मात्राओं (10—10—10—7 यगणांत) के दिए हैं। 'रघुवरजसप्रकास' नामक डिंगल छंद-ग्रंथ में भी इसे 37 मात्राओं का बताया गया है, जिसमें बीस मात्रा पर विश्राम रखा है और दो 'सतरों' के बाद अंत में गुरु बताया है। इस लक्षण के अनुसार प्रस्तुत कृति 'झूलणा' नहीं कही जा सकती। इसका लक्षण 'नीसांणी' नामक अन्य छंद से मिलता है जिसके तेईस मात्रायें होती हैं और तेरह तथा दस मात्राओं पर विश्राम होते हैं। इस 'नीसांणी' छंद के बारह भेद गिनाए गए हैं। झूलणा के नाम से रचित यह छंद इसी नीसांणी का 'शुद्ध जांगड़ी' नामक भेद है जिसमें तेरह तथा दस मात्राओं पर यति के साथ अंत में दो गुरु हैं। पर यह भी सत्य है कि इन्हीं लक्षणों की अनेक रचनायें 'झूलणा' के नाम से ही प्रचलित हैं, यथा—माला सांदू कृत 'महाराजा रायसिंघ रा झूलणा' तथा 'झूलणा अकबर पातसाहजी रा'। इससे यह प्रतीत होता है कि 'झूलणा' छंद का यह लक्षण समय पाकर लुप्त हो गया और लक्षण-ग्रंथों के रचयिताओं ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं देकर स्वयं के ही लक्षण-उदाहरण गढ़ कर परंपरागत छंद-ज्ञान का अनुमोदन कर दिया। राव सुरताण के 'झूलणा' छंद की एक बानगी निम्न प्रकार है। इसमें 'दत्ताणी' नामक स्थान पर जगमाल सीसोदिया तथा जोधपुर के रायसिंह चंद्रसेनोत के साथ हुए उनके युद्ध का वर्णन किया गया है—

सोर धुआं रवि ढंकियो, अरबद रीसाणूं।
त्रह त्रह त्रंबक बाजिया, त्रीपुर सण्णाणूं॥
राणै मन्न विचार कर, कमधज केवाणूं।
जो घर जावां जीवता, ध्रग जीवण जाणूं॥

"बारूद के धुऐं से सूर्य ढक गया, अर्बुद पहाड़ क्रोधित हो उठा, 'त्रह' की ध्वनि से नगाड़े बज उठे, तीनों पुर चकित हो गए, (राणा) जगमाल ने मन में विचार कर राठौड़ रायसिंह को कहलवाया कि यदि इस युद्ध से लौटकर जीवित ही घर पहुंचे तो जीवन धिक्कार है।"

(3) **झूलणा राव अमरसिंघ गजसिंघोत रा**— जोधपुर के महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र राव अमरसिंह की वीरता इतिहासप्रसिद्ध है। गजसिंह द्वारा इन्हें देश-निकाला देकर राज्यच्युत कर दिये जाने पर 'शाहजहां' ने इन्हें 'नागौर' की जागीर देकर अपनी सेवा में रख लिया था। इसी सेवा-काल में इन्होंने 'सलावतखां' नामक बादशाही मीरबख्शी को दरबार में अपशब्द बोलने पर कटारी के वार से मार डाला था। उस समय सारे दरबार में खलबली मच गई थी। अमरसिंह जब किले से बाहर आने लगे तो 'दाराशिकोह' के इशारे पर अमरसिंह के ही साले 'अर्जुन गौड़' ने इन्हें मार डाला था। अमरसिंह के शव की दाह-क्रिया के समय राठौड़ों ने बड़ी बहादुरी का परिचय दिया था। इन्हीं अमरसिंह की बहुविध प्रशस्तियां तत्कालीन काव्य एवं लोक-साहित्य में की गई हैं। दुरसाजी भी अमरसिंह

के समकालीन थे,अत: एक जागरूककवि के नाते उन्होंनेभी 'झूलणा' छंद में इनकी प्रशस्ति कही है। यह घटना 26 जुलाई, 1644 ई० को घटित हुई थी। दुरसाजी की मृत्यु संवत् 1708 (सन् 1651 ई०) में मान लेने से यह उनके अंतिम वर्षों की रचना प्रमाणित होती है। इसमें वर्णित अनेक वीरों (कुल 16) के नाम—'बल्लू चांपावत' 'भाऊकरण' 'भाटी जसवंत', 'तिलोक चहुवांण', 'गिरधर गंगावत' आदि—इतिहासप्रसिद्ध हैं।

'झूलणा' की एक बानगी इस प्रकार है—

(आदि) आद बडा घर हिन्दवां, राव माल मंडोवर,
जीणे जगहथ बंधिया, नवखंडां अूपर।
लख रावत आफाळिया, नव लाख बहादुर,
दश दिस छायी मेदनी, घण मेघाडंबर॥

"हिन्दुओं के आदिकालीन बड़े वंश में मंडोवर का राव मालदेव हुआ, जिसने नौ खंडों पर अपनी कीर्ति-पताका फहराई। उसने नौ लाख वीरों के साथ लाखों योद्धाओं को परास्त किया। सारी पृथ्वी पर, दशों दिशाओं में, इसकी सेना की पदधूलि बादलों के रूप में छा गई।"

(4) **राव सुरताण रा कवित्त**—अपने आश्रयदाता राव सुरताण के लिए दुरसा ने 'झूलणा' के अतिरिक्त 'कवित्त' भी लिखे हैं। यह अपेक्षाकृत छोटी रचना है। इसमें राव सुरताण के चारित्रिक गुणों को शोककाव्य (मरणोपरांत कहा गया काव्य) के रूप में उभारा गया है। 'कवित्त' एक मुक्तक छंद है और इसके 'घनाक्षरी', 'मनहर' आदि नौ भेद माने गए हैं। यह मात्रा और गणों के बंधनों से मुक्त, केवल अक्षरों पर आधारित, लयप्रधान छंद है। इसमें सोलह, पंद्रह की यति सहित (अथवा 8,8,8,7) इकत्तीस अक्षर होते हैं और अंत में गुरु होता है। पर कवित्त के नाम से ज्ञात इस रचना के लक्षणों को देखने से यह 'छप्पय' छंद की रचना प्रमाणित होती है। छप्पय की प्रथम चार पंक्तियां 'रोला' छंद की 24-24 मात्राओं की तथा अंतिम दो पंक्तियां 26 या 28 मात्राओं के 'उल्लाला' छंद की होती हैं। इसी कसौटी पर ये छंद सही उतरते हैं।

सुरताण ने दुरसा को 'कोड़पसाव' का जो दान दिया था उससे सम्बन्धित एक छप्पय (कवित्त ?) निम्न प्रकार है—

सोहन ढाल सुझाल, जीण सहता जळवत्ती,
सूसोवन समसेर, सहत वटूआ भगवत्ती।
कूचीअ सहित कमाड़, गरथ सूसोब्रन माळा,
सत्तर लाख रोकड़ा, गाज करता कम्माळा।
पेसुऔ गांम तांबापतर, अणभंग सांसण अप्पियो।
सुरताण राव भाणंगरू, कव चो दाळद कप्पियो॥

"अच्छी पकड़ वाली ढाल, जीन सहित (घोड़ा ?), सुंदर शमशेर, बटुक सहित भगवती (दुर्गा), चार्वा सहित कपाट, स्वर्ण की माला, सत्रह लाख रुपये नकद, गाज करते हुए ऊंट और पेशुआ नामक गांव का ताम्रपत्र, अभंग 'शासन' के रूप में अर्पित करके 'भाण' के श्रेष्ठ पुत्र सुरताण ने कवि (दुरसा) का दारिद्र्य काट डाला।

(5) **'झूलणा' रावत मेघा रा**—यह एक छोटी-सी रचना है। इसमें तत्कालीन मेवाड़ राज्य के ठिकाने "बेगूं" के चूंडावत शाखा के सरदार रावत 'मेघा' द्वारा, महाराणा अमरसिंह के समय में, शाही सेना से किए गए युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध सन् 1608 ई० में महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध भेजे गए मुगल सेनापति महावतखां, से 'अंटाला' नामक दुर्ग पर आक्रमण करके किया गया था। रावत मेघ ने इसमें बड़ी वीरतापूर्वक महावतखां को पराजित किया था।

इसके साथ ही रावत मेघ द्वारा पंवार क्षत्रियों के विरुद्ध लड़े गए युद्ध का भी उल्लेख किया गया है। यह युद्ध 'बीजोल्यां' (मेवाड़) के कुमार राव 'केशवदास' के साथ हुआ था। महाराणा से रुष्ट होकर जब रावत मेघ 'जहांगीर' के पास चला गया था तो बादशाह ने उसे "मालपुरा" की जागीर बख्श दी थी। मालपुरा पर अधिकार करने के प्रसंगमें ही पंवार रावकेशवदास से युद्ध हुआ था। मेघसिंह बाद में महाराणा के राजी होने पर बादशाह को छोड़कर आ गया था। उसकी मृत्यु सन् 1628 ई० में हुई।

उपर्युक्त दोनों घटनाओं की ऐतिहासिकता के संदर्भ में यह कृति बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें एक सच्चे वीर की वीरता बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णित की गई है।

(6) **कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरीनी 'गजगत'**—राजस्थानी छंदों के एक प्रकार 'गजगत' में रची गई 72 छंदों की इस कृति में गुजरात के जाम सत्ता के पुत्र 'अज्जा' की वीरता का बखान किया गया है। यह युद्ध सम्राट् अकबर के समय में मुगल सेनापति 'अजीज कोका' तथा गुजरात के 'मुजफ्फरशाह द्वितीय,' एवं 'नवानगर' के जामसत्ता की सम्मिलित सेनाओं के बीच लड़ा गया था। उक्त युद्ध में मुजफ्फरशाह तथा जाम ने पलायन किया था। अपने पिता के इस अशोभनीय कृत्य से लज्जित होकर कुमार अज्जा अपने वजीर 'जस्सा' के साथ शाही सेना से युद्ध करते हुए दिवंगत हुए। कुमार की वीरता की प्रशंसा तत्कालीन इतिहासकारों ने भी की है। यह युद्ध सन् 1591 ई० में लड़ा गया था।

'गजगत' नामक छन्द की परिभाषा आचार्यों ने इस प्रकार की है—इस छंद के पहले द्वाले के प्रथम व तृतीय चरणों में 11-11 मात्रायें तथा दूसरे और चौथे चरणों में 9-9 मात्रायें होती हैं। पहले व तीसरे चरणों के अंत में "जी" या 'रे' लगाया जाता है। इनके जोड़ने से ही उक्त चरणों में ग्यारह मात्राओं का विधान

बैठता है। दूसरे द्वाले के प्रत्येक चरण में 28-28 मात्रायें होती हैं और अंत में गुरु होता है। चारों चरणों की तुकें समान होती हैं। ("रघुवरजसप्रकास" में दिये गए लक्षणों के आधार पर)। दुरसा ने इन लक्षणों की पूर्ति तो की ही है, पर पहले द्वाले के चौथे चरण के अंतिम शब्द की पुनरावृत्ति कर उसे दूसरे द्वाले के प्रारंभ में रखा है। इसी प्रकार प्रथम द्वाले के प्रारंभिक शब्द को ही दूसरे द्वाले के अंतिम शब्द के रूप में प्रयुक्त किया है। इससे रचना में आलंकारिकता आ गई है।

प्रस्तुत "गजगत" में कुमार अज्जा के वीर कृत्य को विवाह के सांगरूपक में ढाला गया है। रूपकों की यह परम्परा राजस्थानी कवियों को बड़ी प्रिय रही है। वीरों का यशवर्णन करते हुए अनेक प्रकार के रूपकों की कल्पना की गई है और उनकी प्रक्रिया के प्रत्येक अंश को उपमित किया गया है। रंगरेज, किसान, कुम्हार आदि अनेक व्यवसायों को सांगोपांग रूप में दरसाया गया है। यह "गजगत" भी इसी प्रकार की एक रूपकबद्ध रचना है। इसका एक छंद निम्न प्रकार है—

पटहथ पाखरीजी, खेहां डम्मरी।
घोड़ां घुम्मरीजी, थगनग थरहरी॥
थरहरे थगनग, अळा थरके, मंडळ खेहां डम्मरी।
गरवरे डीया, अवर गढपत, सबळ त्री मो सुत्री॥
मदमसत काबल, घणां मुंगल, पछट दे हथ पाधरी।
अजमाल बरवा काज आवी, पवंग पटहथ पाखरी॥

"पट्ट हस्तियों पर पाखर डालकर, धूलि से आकाश को आच्छादित करती हुई, घोड़ों की टापों से पृथ्वी को कंपायमान करती हुई सबल शत्रु सेना रूपी सुंदरी आई है। दूसरे अनेक गढपति भयभीत हो गए हैं। इसके मदोन्मत्त काबुली और मुगल सैनिक सीधा प्रहार करने वाले हैं। ऐसे हाथियों और घोड़ों से सुसज्जित शत्रु सेना रूपी सुंदरी 'अजमाल' का वरण करने आई है।"

(7) **राजा मानसिंह रा झूलणा**—यह भी दूसरी 'झूलणा' छंद वाली रचनाओं की भांति 23 मात्राओं के "नीसांणी" छन्द में रची गई कृति है। इसमें समान तुकों वाली 23-23 मात्राओं की 12-12 पंक्तियों के आठ छंद हैं (कुल 82 पंक्तियां)। अंतिम में बारह के स्थान पर 10 पंक्तियां ही हैं। सभी के अंत में दो गुरु हैं।

इस रचना में सामान्य रूप से आमेर के कछवाहा राजा 'मानसिंह' का यश वर्णन किया गया है। आमेर नरेश 'भारमल' के पोते तथा राजा 'भगवंतदास' के कुमार मानसिंह बादशाह अकबर के विश्वस्त सेनानायकों में रहे हैं। इन्होंने बादशाह की ओर से भारतवर्ष में तथा इसके बाहर भी अनेक युद्धों में विजयश्री का वरण किया। इनकी वीरता, वदान्यता और धर्म-परायणता राजपूत इतिहास में

सुविख्यात रही है। दुरसा ने इनकी प्रशंसा करते हुए तत्कालीन क्षत्रिय समाज में इनकी श्रेष्ठता की बात कही है। इस काव्य का एक अंश इस प्रकार है —

राकस वंस निकंदणां, एको पति सीता
भार अठार अमूंलणां, हेको हणवंता
सव्व अंधार विखंडणां, एकोइ आदित्ता
एकोइ सेस सहारणां, धर मेर सहित्ता
एकोइ गोकुलि कन्हिवा, गिर नक्खग्रहित्ता
एकोइ चन्दन सेवियै, वन चंदन कित्ता
एकोइ सिसहर नवखंडे, अमरित सूवित्ता
एकोइ वन्नि सुवन्नियां रितिराव फळित्ता
एकोइ जळहर अूबड़ै, नवखंड भरित्ता
एकोइ रिखीअगत्थ है, जिण सायर पित्ता
हसती लाख विडारणां, इक सींह कहित्ता
एकण मान महाबळी, संसारोई जित्ता

"राक्षस वंश का नाश करने वाले एक सीतापति—राम—ही थे। अठारभार-वनस्पति का उन्मूलन अकेले हनुमान ने किया। समस्त अंधकार का नाश एक ही आदित्य करता है। अकेला शेषनाग पहाड़ों सहित धरती को धारण करता है। अकेले कृष्ण ने गोकुल में नख पर गिरिवर को धारण किया। एक चंदन का वृक्ष ही समस्त वन को सुवासित कर देता है। अकेला चन्द्रमा ही नवों खंडों में अमृत बरसाता है। ऋतुराज अकेले ही वनराजि को प्रस्फुटित कर देता है। अकेले एक जलधर ही बरस कर नवों खंडों को जलापूरित कर देता है। अकेले अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया था। अकेला सिंह ही अनेक हाथियों को विदीर्ण कर देता है। इसी प्रकार अकेले महाबली मानसिंह ने समस्त संसार को जीत लिया है।"

(8) **दूहा सोलंकी वीरमदे रा**—'दूहा'—हिन्दी 'दोहा'—अपभ्रंश काल का एक प्राचीन छंद है। राजस्थानी में इसके अनेक भेद व नाम कहे गए हैं, यथा—सोरठो, खोड़ो, चोटियाळो, तूंबेरी, सांकळियो, बड़ो, डोढो, आदि। विषय वस्तु की दृष्टि से भी इसके कई भेद हैं, यथा—रंग रा दूहा, सिंधू दूहा, पारिजाअू दूहा, आदि।

राजस्थानी छंदाचार्यों ने वर्ण-गणना के अनुसार इसके 23 भेद गिनाए हैं। 'हिंगुलाजदान' कविया ने अपने 'प्रत्यय पयोधर' नामक छंदग्रंथ में दोहे के प्रसार की चर्चा करते हुए इसका अत्यधिक विस्तार दिखाया है। 'दूहा' राजस्थानी कवियों का अत्यन्त प्रिय छंद है। शायद ही ऐसा कोई कवि हो जिसने 'दूहा' नहीं कहा हो। नीति काव्य का तो यह प्रमुख छंद रहा ही है पर 'वीरसतसई' जैसे ग्रंथों

में वीर रस का भी यह विलक्षण वाहक प्रमाणित हुआ है। वास्तव में 'दूहा' हर प्रकार की रचना का सबल माध्यम है। उर्दू 'शेर' की तरह यह अपने आप में पूर्ण है। एक समग्र भाव को चित्र की तरह उपस्थित करने में इसकी टक्कर का दूसरा छंद नहीं है, यह कहा जाना कोई अत्युक्ति नहीं होगी। राजस्थानी काव्य का सबसे बड़ा भाग दूहों में ही समाया हुआ है। विद्वानों की धारणा है कि दूहों की संख्या एक लाख से भी ऊपर सरलता से कही जा सकती है।

कवि दुरसा ने भी दूहों का खुलकर प्रयोग किया है। सोलंकी 'वीरमदे' से संबंधित दूहे 'सांकलिया' प्रकार के हैं। इसके पहले तथा चौथे चरणों में 11-11 मात्राएं और दूसरे तथा तीसरे चरणों में 13-13 मात्राएं होती हैं। पहले और चौथे चरणों की ही तुकें मिलने के कारण इसे 'अंतमेल' भी कहते हैं। इसका अन्य नाम 'बड़ा दूहा' भी है। युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में इसका प्रयोग प्रभावोत्पादक समझा जाता है। 'सांकळ' राजस्थानी में 'जंजीर' या 'अर्गला' को कहते हैं। दूहे के गठन से इसके नामकरण का साम्य ध्यान देने योग्य है।

वीरमदे सोलंकी ने शाही सेनाओं तथा महाराणा प्रताप और अमरसिंह के बीच हुए युद्धों में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया था। इतिहासप्रसिद्ध चालुक्य वंश की 'नाथावत' शाखा में उत्पन्न वीरमदे 'सांवतसी' का पौत्र तथा 'देवराज' का पुत्र था। 'देसूरी' (तत्कालीन मेवाड़ राज्य का एक भाग) उसे महाराणाओं से जागीर में प्राप्त थी। उसने 'हल्दीघाटी' के युद्ध में भी भाग लिया था। महाराणा अमरसिंह ने उसे बड़ा सम्मान प्रदान किया था। उसकी मृत्यु सन् 1599 ई० के आसपास अूंटाला दुर्ग के युद्ध में हुई। प्रस्तुत दूहों में मेवाड़ के युद्धों का ऐतिहासिक विवरण देते हुए दुरसा ने वीरम के बल-विक्रम का बहुत सुंदर वर्णन किया है। दूहों की एक बानगी प्रस्तुत है—

> काळौ कळिहि कंठीर, सामंतसी दूजो सुदन।
> टीलाइत त्रिभुअण तणो, हूं बाखाणसि वीर॥
> जनम हुओ जसराति, नरनाइक मोटै नखति।
> वीर भलौ वाधावियो, प्रज वैकुंठ प्रभाति॥
> देद तणो जिण दीह, वीरमदे दीठो वदन।
> रांणिक पोह कीधी रळी, सबळी सामंतसीह॥

"कलियुग के पापों का संहार करने के लिए पराक्रमी सिंह, सामंतसिंह के घर में उत्पन्न, इस दूसरे त्रिभुवनपति वीर (वीरम) का मैं बखान करूंगा। इस नर-नायक का शुभ नक्षत्रों में, यश रात्रि में, जन्म होने पर वैकुंठ की प्रजा ने उस प्रभात में खूब हर्षोल्लास मनाया। देतराज के इस पुत्र का जिस दिन मुख देखा, उस दिन इसके दादा सामंतसिंह ने राज्यभर में खूब खुशियां मनाईं।"

(9) **किरतार बावनी**—इस रचना में इक्यावन छंद ही हैं और प्रत्येक छंद में

विभिन्न व्यवसायों के लोगों के दु:खों का वर्णन किया गया है। कृषक, मल्लाह, महावत, पत्रवाहक, चोर, पासीगर, पट्टेबाज, वेश्या, भिक्षुक, पहरेदार, गारुड़ी, भाट, मरजीया, कहार, लोहार, साधु, बाजीगर, मदारी, लकड़हारा, कसाई आदि विभिन्न अभावग्रस्त और दलित वर्ग के दु:खों का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन करते हुए कवि ने एक अद्भुत मानवीयता का परिचय दिया है। समृद्धि और ऐश्वर्य में खेलने वाले एक उच्चस्तरीय कवि को समाज के इस निम्न वर्ग से परिचय प्राप्त करने और उनके दु:खों का अनुभव करने की जो प्रेरणा हुई वह उसकी कविधर्मोचित जागरूकता की साक्षी है।

छप्पय छंद में रचित यह रचना एक प्रकार से दुरसा के उत्कृष्टतम काव्य में से कही जा सकती है। इसके प्रत्येक छंद में दु:खी व्यक्ति द्वारा अपना पेट भरने के निमित्त सहे जाने वाले दु:खों का कारुणिक वर्णन किया गया है। एक लकड़हारे का चित्र देखिए—

जेठ महीना जोर, तपै तिह दणियर तातो।
धरती वसदे धखै, महावळ लूये मातो।।
काळा गिरवर कहर, जोड़ तिहां निरधन जावै।
सिर भाटो ले सबळ, धसै घर सामों धावै।।
भार संजोगे भेदीयो, भूमि पाव पाछा भरै।
करतार पेट दूभर किया, सो काम एह मानव करै।।

"जेठ के महीने में जब सूर्य प्रचंड रूप से तपता है, धरती पर आग-सी जलती है और वेगपूर्वक लुएं चलती हैं, निर्धन व्यक्ति उस समय तपते पर्वत की ओर जाकर सिर पर बड़ा भार लेकर घर की ओर शीघ्रता से आता है। पर अत्यधिक भार के कारण उसके पांव पीछे की ओर ही पड़ते हैं। भगवान ने पेट को कठिनता से भरने वाला बनाया है जिससे मनुष्य को ऐसे कठिन कार्य करने पड़ते हैं।"

(10) **माताजी रा छंद**—देवी (दुर्गा) के अवतार रूप में प्रसिद्ध चारण देवी 'आवड़' की प्रशस्ति में यह कृति रची गई है। कवि ने इसे 'छंद चालकनेस माताजी रो' भी कहा है। 'चालक' नामक राक्षस का संहार करने के कारण देवी का नाम 'चालकनेस' प्रसिद्ध हुआ। 'आवड़' नामक चारण कन्या 'मामड़' नामक चारण की सात-पुत्रियों में सबसे बड़ी थी। सिंध के शासक हमीर सूमरा ने उनके रूप पर आसक्त होकर उससे विवाह करना चाहा था। पर आजीवन कौमार्य व्रत धारण करने वाली इस देवी ने सूमरा के राज्य का अंत करके वहां भाटियों का आधिपत्य करवाया, ऐसी किंवदन्ति है। तब से ही यह भाटियों की कुलदेवी के रूप में पूजी जाती है। 'आवड़ तूठी भाटियां' (अर्थात् आवड़ भाटियों पर प्रसन्न हो गई)—ऐसी उक्ति राजस्थान में प्रसिद्ध है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने इस देवी के पराक्रम और माहात्म्य का वर्णन भक्ति-

पूर्वक किया है। प्रायः प्रत्येक चारण कवि ने इन चारणी देवियों की प्रशंसा में गीत, कवित्त, दूहा आदि की रचना अवश्य की है। इसलिए दुरसा द्वारा भी इस परंपरा का निर्वाह किया जाना उसकी आस्था का द्योतक है।

रचना का छंद डिंगल छंदशास्त्र का 'रोमकंद' नामक प्रकार है। इसके प्रत्येक चरण में आठ 'सगण' होते हैं और कुल वर्ण चौबीस। (आचार्यों के अनुसार 9, 9, 8 और 6 वर्णों पर यति होती है। अंतिम चरण की, दूसरे छंद के चतुर्थ चरण में पुनरावृत्ति होती है। पूरे छंद में 32 सगण होते हैं।)

उपर्युक्त प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित स्फुट रचनाएं भी मिलती हैं—'कवित्त देवीदास जैतावत रा, कवित्त तोगा सुरताणोत रा, कुंडलिया देवीदास जैतावत रा, नीसांणी हाथीसिंध गोपालदासोत री, नीसांणी राव सुरताण री, गीत राजि श्री रोहितासजी रो। इनके साथ ही अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के शताधिक गीत भी उपलब्ध हैं। 'गीत' एक प्रकार की स्फुट रचना है जो कम-से-कम तीन पदों से प्रारम्भ होकर दसों-बीसों पदों तक की हो सकती है। अधिक लम्बी होने पर यह खंड काव्य या प्रबंध काव्य का रूप भी ले लेती है। अनेक रचनाएं 'गीत' के किसी छंद विशेष में रची गई हैं। प्रिथीराज' कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' 'वेलियो' गीत में ही रची गई प्रसिद्ध रचना है।

दुरसा की पर्याप्त लम्बी जीवनावधि को देखते हुए इनके गीतों की संख्या कई सौ होनी चाहिए। प्रयत्न करने पर दुरसा के रचे अन्य गीत भी मिलने सम्भव हैं, पर सबसे बड़ी कठिनाई उनकी प्रामाणिकता की है। हस्तलिखित संग्रहों में सुरक्षित गीतों में जहां-कहीं नामोल्लेख प्राप्त हो सकते हैं वही एक मात्र आधार है।

दुरसा ने अपने द्वारा रचित गीतों में अनेक प्रसिद्ध गीत-प्रकारों का प्रयोग किया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—साणोर (बड़ो, छोटो, खुड़द और सोहणो के भेदों सहित), नीसांणी, पंखाळो, अरटियो, पालवणी, भाखड़ी, सावझड़ो, वेलियो, आदि। इन सभी गीतों के लक्षण डिंगल के छंद-ग्रन्थों में विस्तार से बताए गए हैं। गीतों के विषय में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये प्रायः किसी ऐतिहासिक व्यक्ति तथा ऐतिहासिक घटना के संबंध में कहे गए हैं। इसलिए इन्हें 'साख री कविता' (साक्षी की कविता) भी कहा गया है। इस प्रकार ये राजस्थान के इतिहास की भी अमूल्य सामग्री हैं। अभी तक इस दृष्टि से इनका अध्ययन नहीं किया गया है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक बार कलकत्ता में एक चारण कवि के मुख से इन गीतों का पाठ सुन कर आत्मविभोर होकर यह कहा था कि 'ये गीत अपनी सरलता, सरसता और भावुकता में संत साहित्य से भी उत्कृष्ट हैं। ये गीत संसार की किसी भी भाषा के श्रेष्ठतम साहित्य से टक्कर ले सकते हैं।' गीतों की प्रशंसा और भी सुप्रसिद्ध विद्वानों ने मुक्तकंठ से की है।

अध्याय 4

भाषा और शैली

दुरसा ने जिस भाषा में विविध छन्दों में रचनायें की हैं उसे राजस्थानी की 'डिंगल' काव्य-शैली कहा जा सकता है। राजस्थानी भाषा की 'मारवाड़ी' बोली को कवियों ने डिंगल काव्य के सशक्त वाहन के रूप में विकसित किया था। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि मारवाड़ी के विस्तृत क्षेत्र में ही अधिकांश चारण कवियों का मूल निवास रहा। डिंगल से पूर्व इस भाषा का नाम क्या था यह निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। हां, भाषाविज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि वह भाषा गुजरात तथा राजस्थान में समान रूप से व्यवहृत थी। आधुनिक विद्वान उसे 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' या 'जूनी गुजराती' अथवा 'मारू-गुर्जर' नामों से अभिहित करते हैं। उस सम्मिलित परिवार की भाषा का पृथक्करण सोलहवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते प्रारंभ हो गया था। पर एकाध शताब्दी तक पृथक् हुई इकाइयां भी सरलता से एक-दूसरे भाग में पढ़ी-लिखी जाती थीं। यही कारण है कि ईसरदास (सोलहवीं शताब्दी), सायां झूला (सत्रहवीं शताब्दी) तथा दुरसा आढा (सत्रहवीं शताब्दी) की रचनायें गुजरात तथा राजस्थान में समान रूप से प्रचलित थीं। दुरसा ने नवानगर के कुमार 'अज्जा' के वीरगति प्राप्त करने पर 'गजगत' नामक छन्द में रचना की थी, यह तथ्य इस धारणा की पुष्टि करता है।

'डिंगल' की प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार बताई जाती हैं—

1. मूर्धन्य ध्वनि वाले वर्णों का बहुशः प्रयोग, यथा—ळ, ट, ठ, ड, ड़, ढ, ण।
2. वर्णों को द्वित्त करने की रीति—कज्ज, कम्म, क्रम्म, ध्रम्म, पळच्चर, मज्झ, पावक्क, उप्पम, जोतिक्क।
3. तणो-तणी-तणा, हंदो-हंदी-हंदा, संदो-संदी-संदा, चा-चो-ची, केरा-केरी-केरो जैसे संबंध कारक परसर्गों का प्रयोग।
4. शब्दों को विकृत करने की रीति—विरळवाण (विद्वान), जुजठळ (युधिष्ठिर)।

5. अनुकरणात्मक शब्दों का बाहुल्य—धड़ाधड़, धमाधम, ढमढम, रड़ब्बड़, खड़क्खड़, तड़त्तड़ ।
6. करन्ती (करती हुई), पढन्तो (पढ़ता हुआ), चढन्ता (चढ़ते हुए), जैसे रूपों का गठन ।
7. श, ष, स—तीनों के स्थान पर केवल दन्त्य 'स' का प्रयोग—श्रावण (सावण), शलाका (सळाख), विष (विस या विख), आशा (आसा), ऋषि (रिसि) ।
8. 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का प्रयोग – ऋण (रिण), ऋच्छ (रीछ), ऋतु (रितु) ।
9. 'स्मृ' 'कृ' आदि शब्दों में आई हुई 'ऋ' का पृथक्-पृथक् रूपों में प्रयोग—स्मृति (समृति, सम्रिति), कृति (क्रति), कृपा (किरपा), कृष्ण (क्रस्ण, क्रिस्ण) ।
10. 'रेफ' के प्रयोग का विकृत रूप—दुर्लभ (दुरळभ), कीर्ति (कीरत), धर्म (धरम), कर्म (करम या क्रम), निर्मल (न्रिमळ, निरमळ) ।
11. कहीं-कहीं 'ए' का 'हे' में परिवर्तन—एकठा—हेकठा, एकां—हेकां, एकल—हेकल ।
12. 'स' का 'छ' में परिवर्तन-तुलसी—तुळछी, अप्सरा—अपछरा ।
13. विशिष्ट काव्य-शब्दावली का गठन—समोभ्रम (समान), बियो (दूसरा), रायांगुर (राजाओं में श्रेष्ठ), धजबंध (ध्वजा धारण करने वाले), तुहाळा (तुम्हारा), त दिन (उस दिन), सुजड़ी (कटारी), धाराळी (कटारी; अभनमो (अभिनव), कमळ (मस्तक) । ऐसे शब्द सैकड़ों की संख्या में हैं जिन्हें केवल काव्य में ही प्रयुक्त किया जाता है । इन्हीं के कारण कुछ विद्वान 'डिंगल' की काव्य-शैली को 'डिंगल भाषा' के रूप में मान्यता देना चाहते हैं । वस्तुतः डिंगल का मूल ढांचा राजस्थानी व्याकरण का ही है । इसके विशिष्ट प्रयोगों के कारण दूसरी काव्य-शैलियों से इसका पार्थक्य दृष्टि-गोचर होता है ।

भाषा की इस विशिष्ट शैली के अतिरिक्त दुरसा की काव्य-भाषा में संस्कृत, फारसी, अरबी, तुर्की आदि के तत्सम व तद्भव शब्दों तथा शुद्ध देशी शब्दों की भी भरमार है । दुरसा के समय तक मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति की जड़ें देश के इस भाग में बहुत गहरी चली गई थीं । लगभग छह सौ वर्षों के इस सतत साहचर्य से जो विदेशी शब्द भाषा में घुल-मिलकर सामान्य बोलचाल के अंग बन गए थे उनका तो खुलकर प्रयोग हुआ ही है, पर दरबारी और सामंती संस्कृति के बहुसंख्यक शब्द भी आने स्वाभाविक हैं । उपर्युक्त अनेकविध शब्दों के कुछ उदा-हरण द्रष्टव्य हैं—

तत्सम संस्कृत

सांगोपांग, कुंत, अभंग, रवि, गिरिवर, वात, भूतल, तरुवर, मरण, कृपाण, प्रसन्न।

अरबी-फारसी-तुर्की (तत्सम एवं तद्‌भव) शब्द

मजबूत, फतै, तरफ, ताजा, दरगाह, कलमां, मसीत, नका, आलम, नवरोज, आतस, पतसाह, फोज, तखत, सोर, हुकम, फरमान, सुरताण, तुरक, जंग, हकीम, सादिम, मरद, दुनीयांण, खान, पैमाल।

तद्‌भव संस्कृत शब्द

मत्थ (मस्तक), सायर (सागर), माण (मान), राकस (राक्षस), निकंदण (निकंदन), सेस (शेष), ग्रहित्ता (गृहीता), अमरित (अमृत), प्रजाळिया (प्रज्वलिता), भाणेज (भागिनेय), सींचीयै (सिंचितव्यम्), विसरांम (विश्राम), वरन्न (वर्ण), दुआरि (द्वारे)।

देशी शब्द

उरड़ियो, रोद, दुरवेस, धमरोळ, धमचक्क, रड़ब्बड़, आडा, अनड़, दाटक, दोयण, धीहड़ी, पधारो, प्राझा। इनमें से भी अधिकांश तद्‌भव हैं।

जैसा कि सभी डिंगल कवियों में देखा गया है, दुरसा ने भी काव्य-प्रयोगों में पर्याप्त स्वच्छंदता बरती है। संभवत: इनका तत्कालीन कवि-समाज में प्रचलन होने लगा था।

कुछ स्वच्छंदतायें इस प्रकार हैं—

1. तुकों के लिए वर्णों को द्वित्त करना—राजन्ना, नन्ना, भवन्ना, लगन्ना, करन्ना आदि।
2. वर्गों का दीर्घीकरण या ह्रस्वीकरण—तुझ (तुम्हारे-तूझ), पहाड़ (पाहाड़), नखत्र (नाखत्र), समंद (सामंद), एकोई (एकोइ), प्रासाद (प्रसाद), जमीं (जम्मी), नदी (नद्दि)।
3. 'ह' 'ज' 'स' आदि वर्णों का पादपूर्ति के लिए निरर्थक प्रयोग।
4. शब्दों की विकृति—मही, इळा (महियळ), शशि (सिसहर), दुनिया (दुनियांण), नदी (नदीयांण)।

आंशिक रूप से यह प्रवृत्ति मूलत: राजस्थानी व्याकरण और भाषा विज्ञान की रही है, पर काव्य-भाषा में इसको 'अति' की सीमा तक पहुंचाने तथा अनेक दुरूह प्रयोग करने का कार्य डिंगल कवियों ने किया है।

यह सब कुछ होते हुए भी दुरसा के काव्य में संस्कृत के तत्सम तथा तद्‌भव

शब्दों का बाहुल्य है। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने पूर्वकालीन कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया था तथा स्वयं उन्हें संस्कृत शब्दों का अच्छा ज्ञान था। उस समय तक संभवतः काव्य-भाषा अपना संपर्क परंपरागत अपभ्रंश भाषा से बनाये हुए थी जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता रहनी स्वाभाविक ही है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां आक्रामक संस्कृति का प्रभाव धीरे-धीरे ही हो पाता है, परंपरागत शब्दावली का चिरकाल तक टिके रहना भी एक तथ्य है। दुरसा ने अपने ग्रामीण आधार से भी इस शब्दावली को प्राप्त किया होगा। दुरसा की भाषा से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि वह भारत के पारंपरिक काव्यकारों की सुसंस्कृत एवं परिमार्जित शब्दावली का ही परिवर्तित रूप है। इससे उनके काव्य को देश की काव्य-परंपरा से जुड़ा हुआ और उस अक्षुण्ण सांस्कृतिक क्रमबद्धता की एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। डिंगल कवियों द्वारा किए गए काव्य-प्रयोगों की रूढ़ियों को पूर्ववर्ती—संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश-भाषा के काव्यों में खोजने से इस परंपरा का पता लगाया जा सकता है।

यद्यपि 'डिंगल' काव्य-भाषा के रूप में एक निराली और विशिष्ट भाषा थी, पर प्रतिभासम्पन्न कवि उसमें भी लौकिक तत्त्वों का कुशलतापूर्वक समावेश कर सकते थे। इस प्रकार के लोक-प्रचलित प्रवादों, लोकोक्तियों और मुहावरों से भाषा अधिक सक्षम एवं प्राणवंत हो उठती है। दुरसा इस तथ्य के प्रति पूर्णतया सजग लगते हैं। उन्होंने बड़े सहज भाव से अनेक स्थानों पर ऐसे लोकप्रचलित प्रयोग किए हैं जो उनकी समग्र भाषा से कटे-छंटे नहीं लगते हुए उसी ढांचे म एकाकार हुए प्रतीत होते हैं। ऐसे कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

मुहावरे—

काजळ री कोर (काजल की कोर), जोखम पूरि (पूरा खतरा), वाय कुवाय (अच्छी-बुरी हवा), रज राखे रजपूत (क्षत्रिय क्षात्रधर्म का निर्वाह करता है), खेलसिर ऊपर खेले (सिर के बल पर खेल खेलता है), नयणे मेले नयण (आंख में आंख गड़ाकर), भर जोबन (पूर्ण यौवन में), सोळ सिणगार (सोलह शृंगार), मेहमातो झड़ मांडे (पूरे वेग से वर्षा की झड़ी लगती है), धोबा भरिभरि धूळ (दोनों हाथों की अंगुलियों में रेत भर कर)।

कहावतें—

'जिण रो जस जग मांय, जिण रो जग धन जीवणो'
(संसार में जिसका यश हो उसका ही जीवन धन्य है।)
'सफळ जनम सुदतार, सफळ जनम जग सूरमा'
(अच्छे दानवीरों और शूरमाओं का जीवन ही सफल है।)

'गढ़ ऊंचो गिरनार' (गिरनार का पर्वत बहुत ऊंचा है।)
'रघुकुल उत्तम रीत' (रघुकुल की रीति बड़ी उत्तम है।)
'पराधीन दुख पाय' (पराधीन रहने वाला दुख पाता है।)

भाषा में इस प्रकार के लोक-तत्त्व के समावेश से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि बहुश्रुत था और समाज के विभिन्न वर्गों से उसका निकट का साहचर्य ही नहीं उनका सूक्ष्म अध्ययन भी था।

दुरसा की काव्य-शैलियों में पारंपरिकता का निर्वाह ही अधिक है। उत्तर डिंगल काल में सूर्यमल्ल ने जिस प्रकार 'वीर सतसई' में शैलीगत प्रयोग किया, अथवा दुरसा से पहिले ईसरदास ने किया, वैसी कोई नई शैलीगत उद्‌भावना तो नहीं दिखाई देती, लेकिन दुरसा ने अपनी कल्पनाओं, उद्‌भावनाओं और प्रतिभा के मेल से अन्य प्रकार से अपने काव्य को उत्कृष्ट कोटि का बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

दुरसा के काव्य में मुख्य रूप से शैलीगत प्रयोग निम्न प्रकार पाये जाते हैं—

(1) **संबोधनात्मक विरुदप्रधान शैली**—जिसे डिंगल काव्य शास्त्र के आचार्यों ने 'सनमुख उकत' (सन्मुख उक्ति) भी कहा है—

मान, बड़ा पख ताहरा, बैवै विरदाळा।
तूं आंबेर उजाळणा, जुग जेण उजाळा॥
छत्तीसां ठकुराइयां, तूं मान बडाळा।
मानां वड्डा तुझ्झ थैं गिरधरण गुवाळा॥

"हे मानसिंह, तेरे दोनों ही पक्ष (मातृ एवं पितृ पक्ष) बड़े यशस्वी हैं। तू आमेर के यश को फैलाने वाला है, तेरा यश सारे युग में व्याप्त है। तू छत्तीस राजवंशों में सबसे बड़ा है। तुझसे बड़ा तो गिरिधर ग्वाल (कृष्ण) ही है—अथवा गिरिवर धारण करने वाले गोविंद ने तुझसे ही बड़प्पन पाया है—(यह संकेत संभवतः मानसिंह द्वारा वृन्दावन में बनाए गए गोविन्ददेव के विशाल मंदिर के कारण किया गया है।)"

(2) **सामान्य प्रशस्तिपरक** शैली—जिसे 'परमुख उकत' भी कहा गया है—

सात्रव सहत सनाह, पमंग सहेता पाखरी।
ढालां सूं मैंगळ मुगल, वीरम की हथवाह॥

"कवच सहित शत्रुओं, पाखर सहित घोड़ों तथा ढालों से ढके हाथियों और मुगल सैनिकों पर वीरम ने खड्ग-प्रहार किया।"

(3) **मरसिया (शोक-काव्य)** शैली—यह किसी काव्य-नायक की मृत्यु के उपरांत उसके गुणों को स्मरण करते हुए कहा जाता है—

महासूर सुदतार रायसिंघ बिसरामियो।
विढण कुण कंवारी धड़ा बरसी॥

कूंजरां तणी मोहतादं करसी कवण।
कवण कोड़ां तणी मोज करसी।।

"महान वीर तथा बड़े दानी रायसिंह ने (मृत्युजन्य) विश्राम ग्रहण कर लिया। अब सेनारूपी कुमारी का युद्धस्थल में कौन वरण करेगा? हाथियों की बख्शीश कौन करेगा और 'कोड़ पसावों' का दान कौन देगा?"

(4) **रूपकात्मक शैली**—'रूपक' अलंकार के माध्यम से वर्णन करने की रूढ़ि डिंगल कवियों को बड़ी प्रिय रही है। दुरसा ने भी इस रीति का खुलकर प्रयोग किया है। सांग और निरंग रूपकों की छटा उनके काव्य में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। "कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत" नामक रचना तो संपूर्ण रूप से 'विवाह' के रूपक में ही आबद्ध है। 'रामदास चांदावत' के एक गीत में 'मरण' रूपी पाहुने की मनुहार करने का रूपक बांधा है। एक अंश निम्न प्रकार है—

परठि वागो जरद, गरद सूधो पहरि,
मिलण कजि साथि लै, वडवडा मीर।
प्राण तो तिको अंत, आवियो प्रांहुणो,
वीरहर आभरण, ऊठि वरवीर।।

"बागा धारण कर, और गर्द ढका हुआ ही कवच पहिन कर बड़े-बड़े अमीरों को साथ ले, मिलने के लिए चलो। प्राण का अन्त करने वाला 'मरण' पाहुन बनकर आया है, हे वीर के पौत्र, (कुलके) शृंगार, श्रेष्ठ वीर, उठो!"

(5) **परिगणनात्मक शैली**—प्रशस्तिपरक काव्य में उपमाओं की झड़ी-सी लगाने की रीति से उपमेय के गौरव में वृद्धि करने की रीति अपनाई गई। पौराणिक और इतिहासप्रसिद्ध कृत्यों से समानता या विशिष्टता बताने वाले ऐसे वर्णन वैसे तो अलंकार-संयोजन के अन्तर्गत आते ही हैं, पर यह शैली विशेष कवि की प्रिय होने के कारण इसे रुढ़ि के रूप में अपनाया गया है। जहां अलंकार-संयोजन नहीं है वहां भी नाम-परिगणना की यह रीति अपनाई गई है—

हो मीरां, हो मीरजां, खांनां, सुरतांणां।
हो रावां, हो रावतां, हो रावळ राणां।
हो तुरकां, हो हिंदुवां, दाखो दीवांणां।
छरा न लग्गी मानकी, कुण तास घरांणां।।

"चाहे मीर हों, मिरजा हों, खान या सुरतान हों, राव हों, रावत हों या रावल, और राणा हों; तुर्क हों, हिन्दू हों या दीवान कहे जाते हों; मानसिंह का प्रहार जिस पर नहीं हुआ हो, ऐसा कौन-सा घराना है?"

'मानसिंघ रा झूलणा' नामक प्रशस्ति काव्य में तो आदि से अंत तक इसी परिगणनात्मक शैली के सहारे ही यशोगान किया गया है।

(6) **चित्रात्मक शैली**—इस शैली से किसी घटना, कार्य-व्यापार या व्यक्ति का एक चित्र-सा खींचने का प्रयास किया गया है। वे एक ही साथ दिखाई देने वाले हों अथवा लम्बी अवधि के विस्तार में व्याप्त हों, समस्त कथ्य को चित्रकार की तूलिका की भांति, रेखाओं में समेट कर रख देने की यह कला प्रतिभासम्पन्न कवियों के ही वश की बात हैं। दुरसा ने ऐसे अनेक चित्र बड़े स्वाभाविक रूप से खींचे हैं—

हूंकळ पोळि उरड़ियो हाथी,
निछटी भीड़ि निराळी।
रतन पहाड़ तणै सिररोपी,
धूहड़िये धाराळी।।

"हुंकार करता हुआ हाथी द्वार की ओर वेगपूर्वक आया तो भीड़ तितर-बितर हो गई। 'धूहड़' के वंशज 'रतनसिंह' ने पहाड़ रूपी हाथी पर अपनी तलवार से प्रहार किया।"

इसमें मस्त हाथी के वेगपूर्वक आने, भीड़ के तुरंत भग जाने और एक सच्चे वीर के खड्ग-प्रहार का स्पष्ट चित्र उभर उठता है। यह चित्रोपमता प्राय: डिंगल कवियों के वर्णनों में मिलती है। 'किरतार बावनी' नामक काव्य में भी विभिन्न व्यवसायों का समस्त कार्य-व्यापार चित्रवत् खींचकर रख दिया गया है—

रितु बरसाळां राति, घोर अंधार होय घण,
बीज चमक्के बळे, मेहझड़ माचि सरावण,
चोर अरध निस चाल, बार धनवंत रै बैसै,
भेदै पत्थर भींत, पनंग ज्यूं मांहे पैसै,
गांम रो धणी तिण नैं ग्रहै, धड़ साजे सूळी धरै
करतार पेट दूभरि किया, सो कांम एह मानव करै।।

"वर्षा ऋतु की रात्रि में जब घनघोर अंधकार रहता है, ऊपर से बिजली चमकती है और श्रावण महीने की झड़ी लगी रहती है, ऐसे समय में आधी रात को चलकर चोर धनिक व्यक्ति के दरवाजे पर जाकर बैठता है। पत्थर की बनी भींत को बेधकर सर्प की तरह उसमें प्रवेश करता है। पर गांव का स्वामी उसे पकड़कर धड़ सहित सूली पर रख देता है। भगवान् ने पेट-भराई बड़ी कठिन कर दी है जिससे मनुष्य को ऐसे काम करने पड़ते है।"

ऐसे वर्णनों में कोई भी रसज्ञ भावक सम्पूर्ण कार्य-व्यापार को चलचित्र की तरह आंखों में उतार सकता है।

(7) **उद्बोधनात्मक शैली**—वीर काव्य ही डिंगल कवियों का उपजीव्य था। अत: क्षत्रियों को वीरोचित कृत्य के लिए प्रोत्साहित करना उनका प्रधान लक्ष्य रहा है। इस कार्य में उद्बोधनात्मक शैली विशेष सहायक होती है। युद्ध-

स्थल में वीरवचनों द्वारा प्रेरित करना तो एक रोमांचकारी कार्य है ही, पर अन्य प्रसंगों पर भी अन्याय, अत्याचार आदि के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न करने के अवसर भी कवियों ने चूके नहीं। दुरसा ने भी शैली के रूप में इसे अपनाया है। 'सोलंकी माला सामदासोत' के गीत में ऐसा ही प्रेरणास्पद उद्‌बोधन द्रष्टव्य है—

पड़ै भार मेवाड़ पतिसाह पारंभीयो,
भाखरां ऊपरै झिगै भाला।
अमर रा भींच जमराय तो ऊपरा,
मंडोअर आवियो, ऊठ माला ।।

"मेवाड़ पर संकट आ गया है, बादशाह ने युद्ध प्रारंभ कर दिया है, पर्वतों पर भाले चमक रहे हैं, अमरसिंह के प्रबल वीर तुझ पर यमराज स्वयं आ गया है, हे माला, उठो!"

डिंगल काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने शैली (उक्ति) के अनेक प्रकार व्याख्यायित किए हैं। सन्मुख, परमुख, परामुख, स्रीमुख और मिश्रित नामक इन उक्तियों में प्रथम तीन के शुद्ध और गर्भित तथा स्रीमुख के प्रसंग में कल्पित, इस प्रकार नौ भेद होते हैं। ये उक्तियां प्रकारान्तर से काव्य-शैलियां ही कही जा सकती हैं। इनमें से प्रथम दो को अन्यत्र विवेचित किया गया है। डिंगल गीतों की रचना-प्रक्रिया में 'उक्ति' की तरह ही 'जथा' नामक शिल्प भी बताया गया है। ये 'जथायें' ग्यारह प्रकार की होती हैं। 'जथा' से तात्पर्य कथ्य के यथानिर्दिष्ट निर्वाह से है। उदाहरण के तौर पर 'सर' नामक 'जथा' के अनुसार गीत के दोहों की पहली तीन तुकों में जो वर्णन किया जाए उसका पूर्ण निर्वाह प्रत्येक दोहे की चौथी तुक में होना चाहिए। गीतों का यह शिल्प विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखता है। दुरसा ने एक कुशल गीतकार के नाते निश्चय ही इस काव्य-शिल्प का बखूबी निर्वाह किया है।

अध्याय 5

शिल्प और तत्त्व

छंद—दुरसा ने सभी रचनायें परंपरागत छन्दों में की हैं। दोहा, सोरठा, छप्पय आदि छंदों के अतिरिक्त डिंगल गीतों के अनेक प्रकारों का प्रयोग किया गया है। नीसांणी, झूलणा, भाखड़ी, सावझड़ो, छोटो साणोर, पंखाळो, दुमेळ, पालवणी, रूपग, गजगत, खुड़द साणोर, बड़ो साणोर, वेलियो, प्रहास, अरटियो आदि गीतों के कुछ प्रमुख भेद हैं जिनमें इनकी रचनायें हुई हैं। दूहों में भी 'सांकळियो' नामक भेद में 'वीरमदे' सोलंकी रा दूहा' की रचना की गई है। डिंगल छंद-शास्त्र में इन सभी भेदों के लक्षण विस्तारपूर्वक बताये गए हैं। ये लक्षण दुरसा कृत गीतों में भी ठीक बैठते हैं। उदाहरण के तौर पर यहां किसना आढ़ा कृत 'रघुवरजस प्रकास' नामक छन्द-ग्रंथ से कुछ छंदों के लक्षण देकर दुरसा के गीतों की परीक्षा की जाती है—

'रघुवरजस प्रकास' (पृ० 219) में लिखा है कि सोलह पंक्तियों के छंद की पहली पंक्ति जब उन्नीस मात्रा की हो तथा शेष 15 पंक्तियां सोलह-सोलह मात्राओं की हों, तुकांत में गुरु-लघु का नियम न हो, और हर चार पंक्तियों की तुकें मिलें, तो 'पालवणी' नामक छंद होता है।

'पालवणी' (गीत गोपालदास सुरतांणोत रो)

बहणो सुजस तणै रवि **बाई**=16 मात्रा
दूजो नको तुहाळी **दाई**=16 मात्रा
तू समपै सौ गामां **ताई**=16 मात्रा
पडलो एक किसूं तो **पाई**=16 मात्रा

इस छंद में, जो 'पालवणी' के प्रारंभ को छोड़कर शेष अंश का एक भाग है, प्रत्येक पंक्ति में सोलह मात्रायें हैं तथा चारों तुकें भी मिलती हैं।

'खुड़द साणोर'—(रघुवरजस प्रकास—पृ० 204-205)

जिस छंद का पहला चरण 18 मात्राओं का, दूसरा 13 का, तीसरा 16 का तथा चौथा 13 मात्राओं का हो और शेष सभी चरण क्रमशः 16-13 के हों, वह

'छोटा साणोर हंसगमा' कहलाता है। तुकांत में दो लघु होते हैं। इसे ही 'खुड़द साणोर' भी कहते हैं :

(गीत देवड़ा प्रथीराजजी रो)

ताढां प्रति अून्हो माठां तीन्हों—	=	18
सबदी उलट अवेव **सिव**	=	13
प्रिसणां रुधिर खीजिया पूजै	=	16
पीथल त्यां रीझै **पुहिव**	=	13
सन्नाहिए भडे सूजावत	=	16
रिमचै सिरि रेडै **रगत**	=	13
नावै दाइ साध कळि नारी	=	16
भावै तो सरिखा **भगत**	=	13

इन पंक्तियों में गीत के उपर्युक्त लक्षण बिल्कुल सही उतरते हैं। इसी प्रकार अन्य सभी छंदों की परीक्षा करने से भी पता चलता है कि दुरसा का छंद-शास्त्र का अध्ययन सांगोपांग था तथा छंद बनाने का उनका कौशल उच्च कोटि का था। डिंगल छंदों की इतनी विविधता के होते हुए किसी भी सिद्धहस्त कवि को नए छन्दों की आवश्यकता नहीं पड़ सकती थी। हां, अप्रचलित छंदों का प्रयोग एक अन्य प्रकार की क्षमता की अपेक्षा अवश्य रखता है। दुरसा ने 'गजगत' तथा 'रोमकंद' जैसे छन्दों का प्रयोग करके इस सामर्थ्य का भी प्रदर्शन किया है। पर यह बात याद रखने की है कि दुरसा अत्यधिक लोकप्रिय कवि थे, अत: उनके द्वारा अधिकांशत: अधिक प्रचलित छंदों में ही रचनायें की गई हैं। दूहा, सोरठा, छप्पय, साणोर (सभी भेदों में) तथा सावझड़ो ऐसे ही छंद थे जिनका तत्कालीन कवि-समाज में बड़ा प्रचलन था। यही छंद दुरसा के भी प्रिय थे।

शब्दालंकार

डिंगल के काव्य-शास्त्र में सबसे प्रधान शब्दालंकार 'वयण सगाई' कहा गया है। यह एक प्रकार का अनुप्रास होता है जिसमें वर्ण की अनेक बार उपर्युक्त आवृत्ति से वर्णन में सौन्दर्य-वृद्धि होने की बात मानी गई है। 'रघुवरजस प्रकास' नामक छंद-ग्रंथ में इस अलंकार का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि छंद के किसी भी चरण के पहले शब्द के आदि अक्षर की आवृत्ति उसी चरण के अंतिम शब्द के आदि अक्षर में हो तो 'वयण सगाई' अलंकार होता है। वयण (वचन) सगाई (संबंध) की अर्थमूलक व्याख्या उसके बाह्य रूप से ही संबंध रखती है। इसे एक प्रकार का अनुप्रास ही कहा जा सकता है। इस महत्त्वपूर्ण अलंकार के अनेक भेद किए जाते हैं। आदि अक्षरों की भांति जब मध्य और अन्त्याक्षरों का आदि से संबंध होता है तो दूसरे-तीसरे भेद माने जाते हैं। मुख्य भेद सात ही माने गए

हैं, पर प्रस्तार के द्वारा शताधिक भी करके बताए जाते हैं।

'वयण सगाई' सिद्धहस्त कवियों की रचनाओं में आनी ही चाहिए, ऐसी मान्यता रही है। पर, इसके विपरीत सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे प्रतिभासंपन्न कवि ने 'वयण सगाई' की अनिवार्यता को नकारा है। उनका कहना है कि वीर काव्य रूपी पावक में यदि 'वयण सगाई' को समाप्त भी कर दिया जाए तो कोई दोष नहीं, बल्कि रस का पोषण ही होगा—

वैणसगाई वाळियां, पेखीजै रस पोस।
वीर हुतासण बोल में, दीसै हेक न दोस॥

पर 'वयण सगाई' को नकारने वाला यह दोहा स्वयं उत्तम प्रकार की 'वयण सगाई' का श्रेष्ठ उदाहरण है। वास्तव में, वयण सगाई के बिना भी प्रभावकारी वर्णन संभव तो है, पर यह भी निश्चित है कि वयण सगाई के प्रयोग से किसी भी वर्णन की सौन्दर्य-वृद्धि तो होती ही है। 'रघुनाथरूपक' नामक छन्द ग्रंथ के रचयिता 'मंछ कवि' ने यहां तक कहा है कि वयण सगाई का प्रयोग होने पर दूसरे काव्य-दोष ढके जाते हैं। जिस प्रकार वंश-परंपरा का वैर भी विवाह-संबंध से सदा के लिए मिट जाता है, उसी प्रकार वयण-सगाई से किसी भी प्रकार के दग्धाक्षर आदि के दोष भी मिट जाते हैं—

खून कियां जाणै खलक, हाडवैर जो होय।
वर्ण सगाई वैण तों, कळपत रहै न कोय॥

ऐसे महत्त्वपूर्ण अलंकार का दुरसा के द्वारा सम्मानित होना आवश्यक ही था। उनकी कुछ रचनाओं से इस अलंकार के समावेश की पंक्तियां देखिए—

"सेलां अणी सिनान, धारा तीरथ में धसै"

(विड़द छिहत्तरी)

जिके मरजिया जात, पूर सायर में पेसे।
मांगे तन रो मोल, बांधि कड़ जळ तळ बेसे॥

(किरतार बावनी)

हूंकळ पोळ उरड़ियो हाथी, निछटी भीड़ि निराळी।
रतन पहाड़ तणै सिर रोपी, धूहड़िया धाराळी।

(रतन महेसदासोत रो गीत)

अन्य शब्दालंकारों—यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि की ओर डिंगल आचार्यों ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। किन्तु छेक, वृत्ति, श्रुति और अन्त्य नामक अनुप्रासों से उनका मोह अवश्य रहा है। 'वयण सगाई' भी एक प्रकार से 'छेकानुप्रास' ही है। वृत्यनुप्रास भी बहुशः प्रयुक्त हुआ है। एक वर्ण की अधिक बार अथवा अनेक वर्णों की अधिक बार आवृत्ति करने से बनने वाले इस अनुप्रास से बनने वाली 'उपनागरिका', 'परुषा' और 'कोमला' नामक वृत्तियों में से 'परुषा'

ही डिंगल कवियों को विशेष प्रिय रही है। इस वृत्ति के वर्ण—ट, ठ, ड, ढ, रेफ सहित संयुक्ताक्षर और द्वित्त आदि—वीररस के वर्णनों के लिए उपयुक्त समझे गए हैं। दुरसा ने भी परुषा वृत्ति के उपर्युक्त विधान की पालना करते हुए प्रचुर रचनायें की हैं। एकाध उदाहरण से यह मत स्पष्ट हो सकेगा—

ग्रीध झडपड पंखझड हुव पीर हडवड।
भीच अण पड बाज धड होय रुंड रडवड ॥
(राव सुरताण रा झूलणा)

मालदे ऊठियो दूठ वेढीमणो,
ताधिवा नरसमंद सार अणताघ
भुजाडंड ओडवे फौज अंडळ भरे,
बला आगळ हुवो—बला रो बाघ ॥
(सोलंकी माला सामदासोत रो गीत)

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में 'ड' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति से ओजगुण की परिचायिका परुषा वृत्ति का निर्वाह हुआ है। प्रसंगवश उपनागरिका और कोमला वृत्तियां भी काम में ली गई हैं, यथा—

"नवली सुंदरि नार, महा अति रूप मनोहर"
(उपनागरिका)
"वाहण चोरिय वेस, चोर मिलि चोरण चालै।"
(कोमला)

यहां आनुनासिक और मधुर ध्वनि-वर्णों के कारण 'उपनागरिका' और कठोर वर्णों के अभाव के कारण 'कोमला' वृत्ति कही जाएगी।

उकत, जथा और दोष—

काव्य-शास्त्र के आचार्यों द्वारा श्रेष्ठ काव्य की जो अन्य कसौटियां उकत (उक्ति), जथा (पुनरुक्ति) तथा काव्य-दोषों का निवारण बताई गई हैं।, उनका भी पूर्णतः निर्वाह दुरसा के काव्य में मिलता है। उक्ति के भेदों—सनमुख, परमुख, स्त्री मुख, मिश्रित, तथा शुद्ध एवं गर्भित आदि विभेदों—की विवेचना इस पुस्तक में अन्यत्र की जा चुकी है। इसी प्रकार ग्यारह जथाओं तथा ग्यारह दोषों की भी चर्चा लक्षण ग्रंथों ने की है। कुछ प्रमुख जथायें और दोष निम्न प्रकार वर्णित हैं :—

'वरण-जथा'—जहां नख से शिख तक तथा शिख से नख तक वर्णन हो उसे 'वरण जथा' कहते हैं।

'अहिगत जथा'—जिस गीत के प्रथम चरण के प्रारम्भ में जिस पदार्थ का वर्णन हो, उसका संबंध चरण के अंत में भी स्पष्ट हो तथा वर्णन सर्प की गति की तरह चले, व 'अहिगत जथा' होती है।

"**अधिक जथा**'—जहां वर्णन में क्रम से अधिक से अधिक वर्णन हो अथवा एक, दो, तीन, चार—इस प्रकार संख्यानुसार क्रमशः वर्णन हो, वहां दोनों प्रकार की अधिक जथायें होती हैं।

ग्यारह काव्य-दोषों के नाम—अंध, छबकाळ, निनंग, हीण, पांगळो, जात-विरुद्ध, अपस, नाळछेदक, पखतूट, बधिर, अमंगळ हैं। जिस छंद में एक से अधिक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हो वहां 'छबकाळ', जहां नायक के माता-पिता का नामोल्लेख न होने से पहिचान में भ्रम हो वहां 'हीण', तथा जहां वर्णन की आनुक्रमिकता का निर्वाह न हो पाए वहां 'निनंग' दोष होता है। इसी प्रकार शेष दोषों की भी व्याख्या की गई है।

दुरसा के काव्य का बारीकी से अध्ययन करने पर ही इस विषय में निर्णयात्मक रूप से कहा जा सकता है; पर सरसरे ढंग से देखने पर ऐसे कोई दोष नहीं पाए जाते। यदि 'उकत', 'जथा', 'दोष' तथा छंद-शास्त्रों की अन्य अनिवार्यताओं को लेकर दुरसा के काव्य में कहीं कोई कमी पाई जाती, तो कवि समाज निश्चय ही उन्हें वह सम्मान नहीं देता जो उन्हें प्राप्त था।

अर्थालंकार

डिंगल कवियों के प्रिय अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अनन्वय, उदाहरण, उल्लेख, संदेह, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, दृष्टांत आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। 'रूपक' इनमें संभवतः सर्वप्रथम स्थान का अधिकारी है। वीरों के युद्ध-वर्णनों में अनेक प्रकार के रूपकों की कल्पनायें की गई हैं। दुरसा द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रमुख अर्थालंकारों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

'रूपक'

(उपमान में उपमेय का निषेधरहित आरोप)

अकबर समद अथाह, तिह डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण मांह पोयण फूल प्रतापसी।।

(विरुद छिहत्तरी)

"अकबर रूपी अथाह समुद्र में सभी हिन्दू-तुर्क डूब गए हैं, पर मेवाड़ का राजा उसमें कमल पुष्पवत् तैरता है।"

व्यतिरेक

(उपमेय में उपमान की अपेक्षा उत्कर्ष का कथन)

अण अथिम अमिट राह अणग्रह अत,
अवड़े पह बादळ अपाल।

जगत तपै सिर दूजो जगचख,
जस जगमगै तणो जगमाल ॥

"जगमाल का यश संसार पर दूसरे सूर्य की तरह जगमगाता है। यह अस्त नहीं होता, इसकी राह अमिट है, इसे राहु नहीं ग्रसता और बादलों से यह ढका नहीं जाता"—यहां वास्तविक सूर्य की अपेक्षा नायक के यश रूपी सूर्य की विशेषता बताई गई है।"

अत्युक्ति

(शौर्य और औदार्य का अत्यंत मिथ्या वर्णन)

अह माथै रांग आभ लग ऊंचो।
नवखंडे जस झालर नाद
रोप्या भला रायपुर राणा
पड़ै न सासण तणा प्रसाद
(राणा अमरसिंह रो गीत)

"शेष नाग के सिर पर जिसकी नींव है, जो आकाश तक ऊंचा है, नवों खंडों में जिसकी यश रूपी झालर का निनाद सुन पड़ता है, ऐसे "शासन" रूपी महल को राणा ने रायपुर में बनवाया"—यहां शेष नाग, आकाश और नवों खंडों की असंभवताओं के कारण औदार्यसूचक अत्युक्ति है।

दुरसा जैसे प्रतिभासम्पन्न कवि के काव्य में स्थान-स्थान पर अलंकारों की छटा प्राप्य है। अलंकार-शास्त्र का कोई भी विद्यार्थी सरलता से इनमें अनेक अलंकारों के अच्छे उदाहरण खोज सकता है। डिंगल कवियों की वर्णन-शैली भारतीय आर्ष काव्य परंपरा से जुड़ी रही है। इनके द्वारा प्रयुक्त रूढ़ियों के स्रोतों की खोज करने के लिए प्राचीन संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश काव्यों का परिशीलन मनोयोग- पूर्वक किये जाने की आवश्यकता है।

रस—

डिंगल काव्य का प्रधान रस "वीर" ही है। दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर आदि इसके अंग हैं। वीर रस के वर्णनों में ही रौद्र, वीभत्स, भयानक, अद्भुत और करुण रसों की, अंगीभूत रूप में, झलकियां दिखाई गई हैं। यह एक विचित्र सत्य है कि डिंगल कवियों ने श्रृंगार के मिस भी वीर रस का वर्णन करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। "सूर्यमल्ल" की "वीरसतसई" इस दिशा में एक श्लाघनीय प्रयास कहा जा सकता है। मध्यकालीन राजस्थानी समाज में, जब घोड़ा, तलवार और सैनिक का वर्चस्व था, ऐसा ही काव्य श्रेष्ठ समझा जाता था। और फिर चारण कवियों का लक्ष्य क्षत्रियोचित गुणों के उत्कर्ष को प्रोत्साहित करना

ही होने के कारण इस प्रकार के काव्य को सम्मान की दृष्टि से पढ़ा-सुना भी जाता था। संभवतः तत्कालीन क्षत्रिय समाज को इसकी आवश्यकता भी थी। इसके अभाव में उन्हें वांछित प्रेरणा और कीर्ति का वरण करने की अभीप्सा नहीं होती। दूसरा प्रधान रस "शांत" ही है जिसमें हर कवि ने भगवद्भक्ति विषयक रचनायें की हैं।

दुरसा के काव्य से उपर्युक्त विभिन्न रसों की बानगियां प्रस्तुत करने का प्रयत्न यहां किया जा रहा है :—

युद्धवीर

कर पोरस इम बोलियो तेजल सुरताणूं।
आज न मेलूं जीवता, करवांण रंगाणूं॥

"पौरुष करके तेजस्वी सुरताण ने इस प्रकार कहा कि आज मैं जीवित नहीं जाने दूंगा, तलवार से रंग दूंगा"—"राव सुरताण रा झूलणा"

धर्मवीर

गीत

कलमां बांग न सुणिये कानां, सुणिये वेद पुराण सुभै।
अहड़ो सूर मसीत न अरचै, अरचै देवल गाय उभै ॥3॥
असपत इन्द्र अवनि आह्वड़ियां, धारा झड़ियां सहै धका।
घण पड़ियां सांकड़ियां घड़ियां, ना धीहड़ियां पढ़ी नका ॥4॥
आखी अणी रहै ऊदावत, साखी आलम कलम सुणो।
राणै अकबर बार राखियो, पातल हिन्दूधरमपणो ॥5॥

"राणा (प्रताप)अपने कानों से यवनों की "बांग" नहीं सुनता, पर वेदपुराणों के उपदेश सुनता है। वह वीर मस्जिद में सिजदा नहीं करता, बल्कि देव-मंदिर और गाय की पूजा करता है। इन्द्र रूपी बादशाह जब-जब पृथ्वी को आक्रांत करने के लिए शस्त्र-प्रहार की झड़ियां लगाता है तो राणा उसे सहन करता है। पर संकट की इन घड़ियों में भी अपनी पुत्रियों को बादशाह के साथ निकाह पढ़ने के लिए नहीं भेजता। उदयसिंह के उस पुत्र ने सदैव सेना का नायकत्व किया। इस बात का साक्षी सारा संसार और स्वयं मुसलमान भी हैं कि प्रताप ने अकबर के समय में हिन्दू धर्म की मर्यादा बनाई रखी।"

दानवीर

महाराजा रायसिंह रो गीत

पदमण महल पोढतां पहली,
ऐरावत देता इक आग।
इळपत रासै चित आलोचे,
नगनग पैड़ी दीधा नाग।।

"पद्मिनी के महलों में शयन करने जाते समय पहिले के नरेश एक हाथी का दान किया करते थे, पर राजा रायसिंह ने उदारभाव से हरेक सीढ़ी पर एक-एक हाथी का दान किया।"

वीभत्स रस

"रत्त गड-गड सोख मड प्रजडांण खडखड"
"ग्रीध झडपड पंखझड हुव वीर हडबड"
"भीच अणपड बाज धड हुव रुंड रडवड"

"इन पंक्तियों में मृत शरीरों से रक्त का पान, गृद्धों के पंखों के झपाटे, धड़ों और रुंडों का गिरकर लुढ़कना आदि युद्ध-व्यापार वीभत्स दृश्य उपस्थित करते हैं। राव सुरताण रा झूलणा"

करुण रस

राव सुरताण रा कवित्त

आज पड़े असमान, आज धर-कंकण भागो,
आज महाउतपात, नीर धूतारे लागो।
आज कळू अूथल्ल, आज कव आदर छूटा,
आज टळे आसंग, आज सनमंध विछूटा।।
"सुरताण मरण फूटो नहीं, हाय हाय फूटो हियो"

"आज आकाश नीचे गिर गया है, पृथ्वी का कंकण फूट गया है—वह विधवा हो गई है, आज महान उत्पात से समस्त संसार में जल-प्रलय हो गया है, पानी ध्रुव तक पहुंच गया है, आज सारे संसार में उथल-पुथल मच गई है, आज कवियों का सम्मान लुप्त हो गया है, आज प्रसन्नता जाती रही है, संबंध टूट गया है। आज सुरताण की मृत्यु पर भी हे हृदय तू फटा नहीं, तू निरा अंधा है।"

रौद्र रस

सोर धुआं रवि ढंकियो, अरवद रीसाणूं ।
त्रह त्रह त्रबंक बाजिया, त्रीपुर सण्णाणूं ॥

"बारूद के धुंओं से आकाश आच्छादित हो गया है, अर्बुदाचल क्रोधित हो उठा है, "त्रह" की ध्वनि करते हुए नगाड़े बज उठे हैं, तीनों पुरों में भयत्रस्तता छा गई है ।"—"राव सुरताण रा झूलणा"

शांत रस :

किरतार बावनी

विषम ताढि बापरी, जिका वन नीला जाळे,
तख खिण अरहट तेथि, हेम नीकै जळ हाळे ।
परठ पाणी ती पुरख, पाव पाणी करि प्यारा,
दुख देही दाखवै, कसी सूं वाळै क्यारा ।
सीत रै जोर जळ सेवतां, धड़ धूजै कंपवा धरै,
करतार पेटदूभरि किया, सो काम एह मानव करै ॥

"भयंकर सर्दी से जब हरे वन भी शीत-दग्ध हो जाते हैं, उस समय अरहट के बर्फ जैसे पानी में पांव देकर फावड़े से क्यारियों में पानी देता हुआ किसान शारीरिक कष्ट उठाता है । शीत के कारण उसका सारा शरीर कांपने लगता है । भगवान ने पेट को बड़ी कठिनाई से भरने वाला बनाया है जिसके कारण मनुष्यों को ऐसे काम करने पड़ते हैं—इससे भगवान की महिमा और उसकी इच्छा के प्रति मानव के आत्मसमर्पण की भावना व्यंजित होती है ।"

रस-निष्पत्ति के ऐसे अनेक उदाहरण दुरसा के काव्य में खोजे जा सकते हैं । पर यह निस्संकोच स्वीकार करने योग्य है कि वीर रस ही दुरसा का प्रिय था, जैसी कि उस समय के समस्त डिंगल कवियों की स्थिति भी थी । वीर रस के नानाविध वर्णनों से दुरसा का काव्य ओत-प्रोत है । वीरतापूर्ण वचनों, ललकारों, चुनौतियों, कुल-गौरव की भावना से अभिभूत होकर की हुई प्रतिज्ञाओं, देश-धर्म और अबलाओं पर होते आत्याचारों के लिए किए गए उत्कट आवेशों, शत्रु को देख कर होने वाले उल्लासों, आदि के नानाविध दृष्टांत दुरसा के गीतों-कवित्तों में सरलता से प्राप्त हैं ।

वस्तु वर्णन—

रसों के अतिरिक्त भी काव्य में अनेक ऐसे स्थल हैं जहां कवि का कौशल प्रकट होता है । विषयों की विविधता इसके लिए कवि की कसौटी बन जाती है । इसी से कवि के सूक्ष्म अध्ययन और अपने समकालीन चतुर्दिक् को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित करने की क्षमता का आभास मिलता है । यह दृष्टि किसी भी रस-

विशेष के वर्णनों के लिए लागू हो सकती है, जो कि कवि की रुचि और प्रतिभा के अनुसार न्यूनाधिक हो सकती है। ऐसी बहुश्रुततासंभवत: कविकर्म का एक प्रधान अंग है।उदाहरण के लिए युद्ध के वर्णनों में भी कवचों-हथियारों-घोड़ों-हाथियों आदि की पूरी जानकारी, युद्ध कला का परिचय, पारंपरिक वर्णनों का ज्ञान, युद्ध पूर्व और समरांत की रीति-आचार आदि अनेक सूक्ष्म अंग-उपांग हैं जिन्हें निकट रहकर देखने वाला ही बखान सकता है। दुरसा चूंकि मात्र कवि ही नहीं बल्कि योद्धा भी थे, और युद्धों में लड़े भी थे, अत: उनके द्वारा किए गए वर्णनों में इन सभी बातों की बारीकियां आनी स्वाभाविक है। वैसे भी दूर-दूर तक श्रीमानों, राजपुरुषों और सामंतों-नरेशों से मिलने-जुलने के लिए की गई अनवरत यात्राओं में उन्होंने जनजीवन को पर्याप्त निकटता से देखा होगा। अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में अभावग्रस्त जीवन बिताते समय उन्होंने बहुत से अभावों और कष्टों का स्वयं अनुभव भी किया ही होगा। ऐसी ही साधनाओं ने उनको वह अंतर्दृष्टि दी जो उनके काव्य में यत्र-तत्र खोजी जा सकती है। पारंपरिक भारतीय साहित्य का उनका अध्ययन भी बड़ा विस्तृत रहा होगा जिसे उनके काव्य में स्थान-स्थान पर आए ढेरों दृष्टांत प्रमाणित करते हैं। वस्तुवर्णन की उपर्युक्त धारणाओं की पुष्टि में उनके काव्य से कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :—

मानसिंघ रा झूलणा

नखत अमोघ जनमीया, दुहु पखि राजन्ना,
दादा पीथल, भारमल, पंचायण नन्ना,
ऊवा नवेग्रह राजयोग, मझि बार भवन्ना,
धनि महूरति जनमराति, धनि तास लगन्ना,
खग्गि हणू जिम लखिणह, जिम भीम अजन्ना,
दत्ता वीक्रम ओज बळि, कूरम करन्ना,
बड़ा गढ़ां तोड़णो, दैना बड़ दन्ना,
वंस छतीसां सैधणा अढार वरन्ना,
हुव सुप्रसन्ना वालमीक, सरसै सुप्रसन्ना,
जैदे, सुखदे, वत्रवा, बलि व्यास वरन्ना,
आदि सकति प्रसन्न हू, गणपति प्रसन्ना,
काहे खड़ा चित्तीयै मन्ना असमन्ना।

इस छंद में मानसिंह कछवाहा के वंश का परिचय, ज्योतिष शास्त्र के अनुसार राजयोग देने वाले ग्रहों और शुभ लग्न-महूर्त आदि की जानकारी, हनूमान, लक्ष्मण, भीम, अर्जुन, कर्ण, विक्रमादित्य, बलि आदि पौराणिक-ऐतिहासिक पात्रों का ज्ञान, तथा बालमीकि, जयदेव, सुखदेव, वेदव्यास आदि कवियों की मोटी जान-

कारी परिलक्षित होती है। इसी कृति में आगे चलकर अकबर की ओर से मानसिंह द्वारा किए गए सैन्य-प्रयाणों, छत्तीस राजकुलों, मुसलमान धर्म से संबंधित तथ्यों तथा अनेक प्रकार के पौराणिक प्रसंगों के संकेत स्थान-स्थान पर उपलब्ध हैं। इन सबसे कविकर्म की दुरूहता और विस्तृत ज्ञान की अपेक्षा प्रकट होती है।

विषय वस्तु की विविधता की दृष्टि से दुरसाकृत 'किरतार बावनी' एक बेजोड़ रचना है। उसमें पचास छंदों में विविध पेशों के लोगों के कष्टों का सहानुभूति पूर्ण वर्णन किया गया है। प्रमुख पेशे—किसान, नाविक, यात्रारक्षक, कासिद, महावत, सिपाही, चोर, पासीगर, माछीगर, वेश्या, भिखारी, गारुड़ी, ठग, पहरेदार, तैराक, भाट, लकड़हारा, भील, कहार, खनिक, मरजीया, कसाई आदि बताए गए हैं।

काव्य-सौष्ठव

काव्य के छंद, अलंकार, रस आदि अन्य अनेक बाह्याभ्यंतर उपादानों से ऊपर कवि की अपनी अभिव्यक्ति ही प्रमुख होती है, जो उसके काव्य को एक निजी विशिष्टता प्रदान करती है। यही अभिव्यक्ति रूढ़ियों और परम्पराओं के वाग्जाल में से उसके निजत्व को उजागर करती है। अतः उस अभिव्यक्ति की व्याख्या ही किसी कवि के काव्य-सौष्ठव की सच्ची पहिचान होगी। इसी अभिव्यक्ति को 'शैली' मानने वाले पाश्चात्य आलोचकों ने 'स्टाइल इज दी मैन' कहकर इसका महत्व प्रतिपादित किया है।

दुरसा के काव्य में इस आत्मीय अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप उसकी संबोधनात्मक शैली में निहित समझा जाना चाहिए। राजदरबारों और युद्धों में समान रूप से अपनी ओजस्वी वाणी में वीर कृत्यों का अभिनंदन करने वाले और क्षात्रधर्म की प्रतिष्ठा के लिए मर मिटने की प्रेरणा देने वाले उनके विरुदायक स्वरूप का प्रकाश जहां-जहां प्रतिबिम्बित हुआ, वे ही स्थल डिंगल के चारणी काव्य की आत्मा बन गए हैं। एक सच्चे चारण, कीर्ति का प्रसार करने वाले चारण, की इससे सुंदर पहिचान संभव नहीं हो सकती। विद्वत्तापूर्ण वर्णनों, कष्ट कल्पनाओं और शब्दाडंबरों में जकड़ी रूढ़ियाँ तथा परंपरायें डिंगल को चारण-काव्य नहीं बना पातीं। ऐसे ओजपूर्ण उद्‌बोधन ही उसे वह संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। चाहे कोई प्रशस्ति-गीत हो, चाहे उद्‌बोधन हो या मरसिया हो, दुरसा एक सच्चे चारण की तरह उच्चतर धरातल पर खड़े होकर अपनी बुलंद आवाज में दोनों हाथों को उठाकर, हृदयों को आन्दोलित करते, यशगान करते हुए प्रतीत होते हैं। ऐसे समय उनका स्वर समूचे युग का, समस्त संस्कृति का स्वर बन जाता है।

ओज, स्फूर्ति, प्रेरणा, प्रोत्साहन और उद्‌बोधन से भरा ऐसा ही एक छंद देखिए। 'रामदास चांदावत' के गीत में दुरसा उसे मृत्यु रूपी मेहमान की आव-

भगत करने का आमंत्रण देते हैं—

हुवै भगति हथवाह ओछाह सबळा हुवै,
सुकज सुहड़ां तणौ मनि सुहायो।
तूं जिकौ वांछतौ राम चांदा तणा,
आज को मरण महमाण आयो॥1॥

"खड्ग-प्रहारों की मनुहारों से सबल भी 'ओछे' हो रहे हैं, योद्धाओं के इस सत्कृत के समय आज मृत्यु रूपी मेहमान आ गया है, जिसकी तुझे अभिलाषा थी।"

महाराजा रायसिंह के शोकगीत (मरसिये) में भी ऐसे ही एक युग-प्रवाही स्वर में दुरसा ने बेलाग होकर रायसिंह की वदान्यता की प्रशंसा में ये पंक्तियां कही हैं—

बळे कदी देखसां जदी वाखाणसां।
हुसी कोई हाथियां देण हारो॥

"फिर कभी दुनियां में कोई हाथियों का इतना बड़ा दान करने वाला पैदा हुआ देखेंगे तो हम उसका बखान तब करेंगे।"

संभवतः अभिव्यक्ति के इस कौशल से ही दुरसा ने जन-मन को प्रभावित किया, और जहां कहीं गए मान-सम्मान, धन व ऐश्वर्य प्राप्त किया। अकबर को संबोधित करते हुए कहा गया उनका गीत, महावतखां और बैरामखां को कहे गए उनके दोहे, मानसिंह की प्रशंसा में कहे गए उनके झूलणे(नीसाणी) तथा राव सुरताण, अमरसिंह आदि का यशवर्णन करते हुए उनके कवित्त आदि सभी में उद्‌बोधन का यह स्वर प्रमुख रूप से उभरकर आया है।

एक और पक्ष कवि की मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का भी है। वह कहीं भी विवादों में नहीं उलझा है। मानसिंह और प्रताप के तथाकथित वैमनस्य की झलक भी कहीं उनके काव्य में नहीं मिलती। अकबर की प्रशस्ति करते हुए उसने प्रताप का उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार प्रताप के यश-वर्णन में अकबर की निन्दा नहीं होनी चाहिए थी। यह निन्दा 'विरुद-छिहत्तरी' के अतिरिक्त किसी अन्य काव्य में नहीं है। चूंकि इस रचना की प्रामाणिकता विवादग्रस्त है, अतः दुरसा की विचारधारा के अनुसार यह एक चिन्त्य विषय है। अन्य किसी भी गीत या छंद में, परम्परागत शत्रुता में उलझे राजपूत कुलों की निन्दा को उन्होंने चतुराई से बचाया है। यह भी दुरसा की लोकप्रियता का एक कारण है। वैसे भी सारग्राही कवि को गुणों, आदर्शों और सत्कृत्यों का यशोगान ही अभीष्ट होना चाहिए।

दुरसा के काव्य-सौन्दर्य में उनके शब्द-चित्रों की विशालता, व्यापकता और उदात्तता अत्यधिक प्रभावोत्पादक है। उनके युद्ध-वर्णनों में पहाड़ रक्त में रंग

जाते है, आकाश कुंकुमार्चित हो उठता है, धरती पर रक्त-प्रवाह बहने लगता है, और उन सबके बीच विजयश्री को वरण करने वाले क्षत-विक्षत वीर की दीर्घ काय बलिष्ठ मूर्ति रक्तरंजित खड्ग लिए गर्व से माथा उठाये खड़ी दीखती है। ऐसे ओजस्वी और प्राणवंत चित्र ही दुरसा के काव्य को जीवंत, छबिवंत बनाते हैं।

दुरसा की कल्पनायें बड़ी भव्य हैं, उनका शब्दसंयोजन मार्मिक है, उनका वर्ण-विन्यास रसोद्रेक करने वाला है, उनकी शैली प्रेरणास्पद है, उनका वर्णन उद्दाम है, उनके उपमान दिव्य हैं; और उनके मूर्तिमंत शब्द-चित्र गगनचुम्बी होकर दशों दिशाओं में व्याप्त हैं।

•

अध्याय 6

समाज और संस्कृति

दुरसा के काव्य का समाज स्पष्टतः दो भिन्न भागों में विभक्त है। एक तरफ तो समृद्ध पर संघर्षशील सामन्ती समाज है, जिसके पास भूमि है, अनुचर हैं, सैनिक हैं, और इन सबके फलस्वरूप अपेक्षाकृत संपन्नता भी है। दूसरी ओर राज्याश्रित वर्ग के अतिरिक्त जनसामान्य है जो कठिन श्रम करने पर भी बड़ी कठिनाई से अपना पेट पाल सकता है। जो सामन्ती वर्ग है, उसे निरंतर युद्धरत अथवा दान-तत्पर ही चित्रित किया गया है। युद्ध को विशुद्ध पारिभाषिक अर्थ में 'युद्ध' के रूप में ही चित्रित किया गया है, उसमें आदर्शों एवं मूल्यों का टकराव अथवा द्वन्द्व की स्थिति स्पष्टतः उभर कर नहीं आई है। वीरता-प्रदर्शन एक करतब ही बनकर रह गया है। उसके पीछे की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बहुत थोड़े प्रसंगों में ही उभर कर प्रत्यक्ष हुई है। ऐसे स्थलों पर अनेक कल्पनाओं और उक्तियों के बावजूद युद्ध औपचारिकताओं, रूढ़ियों और परम्पराओं में उलझकर रह गया है, वीरता पट्टेबाजी का प्रदर्शन ही बन गई है। जीवित समाज से, उसके प्रति किए गए अन्यायों की उपकृति के रूप में, उसका कोई संबंध नहीं रह गया है। जहां कहीं वीरता और युद्ध को कारणसम्मत बनाया गया है, वहां वह क्षात्रधर्म के पालन का व्रत लिए हुए हैं। डिंगल कवियों ने इस धर्म को अन्यत्र अनेकरूपों में मुखरित किया है। इनमें से एक इस प्रकार है—

धर जातां ध्रम पळटतां, त्रियां पड़ंतां ताव।
अै तीनूं दिन मरण रा, कूण रंक कुण राव॥

"जब धरती छिनी जाती हो, धर्म का अनादर हो रहा हो और स्त्री-समाज विपदाग्रस्त हो—ये तीनों दिन मर मिटने के हैं, भले ही कोई गरीब हो या राजा हो।"

इस आदर्श का निर्वाह करने की प्रेरणा डिंगल के चारण-कवियों ने नाना प्रकार की काव्योक्तियों में दी हैं। दुरसा के गीतों में क्षत्रियों के इसी धर्म के उल्लेख हैं।

क्षात्रधर्म का यह वर्चस्व केन्द्रीय विदेशी-मुस्लिम सत्ता के विरोध के रूप में

मुख्य रूप से प्रकट हुआ है। इसके पीछे दो भाव हैं, एक तो स्वयं की स्वाधीनता की रक्षा का तथा दूसरा स्वधर्म को पराभव से उबारने का। इन दोनों भावों को दुरसा ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर उभारा है। अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते हुए कष्ट सहन करने वाले और अपनी लड़कियों की शादी बादशाहों से करके उनकी कृपा अर्जित करने में विश्वास नहीं करने वाले महाराणा के लिए कहे गये उनके गीत इस संबंध में दृष्टव्य हैं :—

महाराणा प्रताप रो कवित्त (छप्पय)

अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी।
गो आडा गवड़ाय, जिको वहतो धुर वामी।
नवरोजे नह गयो, न गो आतसां नवल्ली।
न गो झरोखां हेठ, जेठ दुनियांण दहल्ली।
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो म्रित साह प्रतापसी।।

"तुमने अपने घोड़े को बादशाही सेना का दाग नहीं लगने दिया। तुम्हारी पगड़ी कभी किसी के आगे झुकी नहीं। तुम, जो हमेशा वामपंथी—विरोध के विकट मार्ग पर चलने के कारण घोर संघर्ष करने वाले—बने रहे, अपनी प्रशंसा के गीत गवाते हुए इस संसार से विदा हुए। तुम कभी नवरोज के जश्न में नहीं शरीक हुए और न आतिशबाजियों में। तुम कभी बादशाही दर्शनों के झरोखों के नीचे भी नहीं गए जहां जाते हुए दुनिया दहल उठती थी। ऐसी आन-बान वाला गुहिल वंश का राणा अविजित ही चला गया, यह सोचकर बादशाह ने क्रोध से दांत भींचकर अपनी जीभ काट ली। हे प्रताप, तुम्हारी मृत्यु पर इस दुःख से निःश्वास छोड़ते हुए बादशाह की आंखों में आंसू भर आये।"

मरणोपरांत कहे गए इस शोक-काव्य में राणा की स्वाधीनता की जय-जयकार करते हुए कवि ने स्वतंत्रता के उच्चतम आदर्श की स्थापना की है। धर्म संकट-संबंधी एक छंद की कुछ पंक्तियां भी बड़ी सराहनीय बन पड़ी हैं :—

राउल राण राउ अनि राजा।
अकबरि नरि विनड़िया अनेक।।
दुजड़ो खरो अभनमा दूदा।
हींदूकारि तुहाळो हेक।।

"अकबर से आतंकित जब अन्य राजा-राणा-रावल-राव असमर्थ हो गए तो अकेले तूने (सुरताण ने) तलवार उठा कर हिन्दुत्व की जयजयकार की।"

क्षत्रिय समाज के ऐसे वीरोचित कार्यों से दुरसा ने अनेक सांस्कृतिक मूल्यों को उद्भासित किया है, जैसे—**दानवीरता, वचन-पालन, शरणागत-रक्षा, स्वामि-भक्ति, अतिथि सत्कार, प्रतिशोध, यशोकामना तथा सत्ता-विरोध।**

वचनपालन क्षत्रियों का प्रमुख गुण गिना गया है। इसके उदाहरण डिंगल साहित्य में भी प्रचुर हैं। दुरसा ने मानसिंह सकतावत के गीत में इस का बखान किया है। मानसिंह ने अपने मित्र भीम सीसोदिया को उसके आह्वान पर आकर युद्ध करने का वचन दिया था। हाजीपुर नामक स्थान पर जाकर उसने वचन पालन किया—"मेवाड़ धकां पूरबगढ़ माल्है,अईयो सकतहरा उनमान।जग परदेस जीववा जावै, मरवा गयौ करारो मांन ।।" **स्वामिभक्त** मेड़तिया मुकुन्ददास अपने स्वामी "राणा" के लिए बलिदान होकर वैकुण्ठ में परमेश्वर के समान ही पूजित हुआ—

मोटा सांमि सुछळि मेड़तियै, महि मोटो कीधो मरण।
परमेसर भेळा पूजीजै, वैकुंठ वीर कळोधरणा ।।

अदम्य उत्साह, हिम्मत और उत्कट वीरता के सदगुणों का बखान करते हुए चौहान 'जसवंत भाणोत' का वर्णन बड़ा समर्थ बन पड़ा है—

सोर सर पाथरां तणौ बरसै सघण।
पेलज्यै सेल खग चढे पीठांणि ।।
हाथ ऊभा किया मूगले हिंदुअे।
भांण रो त्यार बाखांणियो भाण ।।

"जब गोलों-पत्थरों-बाणों की सघन वर्षा हो रही थी, ऐसे समय घोड़े की पीठ पर चढ़कर भालों के प्रहारों से शत्रुओं को बेधते समय,मुगलों और हिन्दुओं ने समर्पण-भाव से हाथ ऊंचे कर दिए, तो भाण के पुत्र की प्रशंसा स्वयं सूर्य ने की।"

प्रतिशोध की अग्नि से तत्कालीन क्षत्रिय समाज धधक रहा था। यह मानव सभ्यता की आदिम वृत्ति के रूप में हरेक वीर के हृदय में प्रज्वलित रहती थी। डिंगल काव्य भी इससे अछूता नहीं है। दुरसा ने "मांडण" के गीत में उस प्रतिशोध का यशोगान किया है—

वडो वैर विढि वाळीयो मयंक सीहो वहै,
विसहरे, नरे मानी सुरे वात।

प्रतिशोध की ही भांति ऋण से **उऋण होना** भी एक बड़ी बात मानी जाती थी। दुरसा ने इस उऋण होने की भावना की ओर लक्ष्य करते हुए मेवाड़ के राणा की प्रशंसा में एक छंद में यह संकेत किया है—

"क्षत्रियां कुळ लहणो छोड़वियो, राण दियंते रायपुर"

"राणा ने "रायपुर" का दान देते हुए क्षत्रियों पर चले आ रहे चारणों के ऋण से जैसे क्षत्रिय कुल को मुक्त करवा लिया।"

वीर "चांदा" को सत्ता के विरोध में रहकर बादशाही राज्य से भी जकात वसूल करते हुए दिखाकर दुरसा ने **सत्ता-विरोध** की बात कही है—

आलम धर तणी जगाति उग्राहै,
अरबद धरा भरै डंड आण।

राह सदा लग ग्रहै चंद रवि,
चंद राह ग्रहीया चहुंआंण ॥

दानवीरता की प्रशंसा में कहा गया एक गीत बीकानेर के महाराजा रायसिंह से संबंध रखता है जिन्होंने 'शंकर' नामक बारहठ को सवा करोड़ रुपए का दान दिया था—

सवलाखां अूपर नवसहसा,
लाख पचीसूं दीध हिलोळ ।
खित पुड़ घणा गडोथळ खावै,
बूडै छात बिया जस बोळ ॥

"हे राठौड़ (नवसहस्र के विरुद को धारण करने वाले), तुमने सौ लाख के भी अूपर पच्चीस लाख और प्रसन्न होकर दिए। इस पृथ्वी पर तुम्हारे इस यश के प्रवाह में दूसरे अनेक राजा उथल-पुथल हो रहे हैं।]

दानवीरता के साथ ही **गुणग्राह्यता** का एक और स्वरूप भी परंपरागत भारतीय संस्कृति के प्रतीक रूप में तत्कालीन उच्च वर्ग में विद्यमान था। इसका एक दृष्टांत कवियों को पालकी में बैठाकर राजा या दानदाता द्वारा स्वयं कंधा देने के रूप में प्राप्य होता है। यह एक उच्च कोटि का आदर्श सम्मान समझा जाता था। बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने कोड़ पसाव का दान देते समय कवि की पालकी में जो कंधा दिया उसके सूचक गीत का संबंधित अंश दुरसा ने इस प्रकार कहा है—

कांध जिको तैं दीध कलावत, अेही मौज लहर अनमंध ।
जस उर धकै आवतां-जातां, बूड अनेरा मुकुटबंध ॥

"हे कल्याणसिंह के पुत्र, तुमने जो (कवि की पालकी के) कंधा दिया, वह मानों दान के प्रबल प्रवाह की एक लहर बनगई, जिसके सामने आते अनेक मुकुट-धारी आते-जाते डूबने लग गए।"

"वीरभोग्या वसुंधरा" के सनातन सत्य को दोहराते हुए दुरसा ने "तोगा सुरताणोत" के गीत में इस पर बार-बार बल दिया है—

अंग हू मछर मेलै नहीं आपणौ ।
तिके नर भोगवे कीय धरती तणौ ।
रोहड़ी कथा कूरम ह्रिद अूपनी ।
मारकां हाथि आवै सदा मेदनी ॥

लेकिन वीरों का वीरत्व भी धर्मविहीन नहीं था। वीरों की **धर्मपरायणता** सदा प्रशंसापूर्वक वर्णनीय रही है। युद्धभूमि में जाने से पूर्व समस्त धार्मिक आच-रण करने के प्रमाण दुरसा के साहित्य में प्राप्त हैं—

सुमरण, दानसिनान कर, वन्दे गोविन्दा।
तिलक दवादस ताणियां, सिर मंजरबंदा ।।
दळ भीना गंगाजळे, चन्दण चरचंदा ।
जाणै पंडव हालिया, गिर हेम गळंदा ।।
लिया छतीसां आवधां, मारू मलफन्दा।
एकूके क्रम काट काट, असमंद करंदा ।।

"भगवान का स्मरण, स्नान, दान और वन्दना करके, द्वादस तिलक लगाकर, सिर पर तुलसी की मंजरी लगाकर, गंगाजल में भीगे चंदन से स्वयं को चर्चित कर, छत्तीस आयुधों को धारण किए हुए राठौड़ वीर ऐसे चले मानों पांडव हिमालय में अपने को गलाने जा रहे हों। फिर एक-एक करके क्रम से (शत्रुओं को) काटते हुए उन्होंने युद्ध किया।"

उपर्युक्त सांस्कृतिक मूल्यों की बातें दुरसा ने क्षत्रियों के प्रसंग में ही कही हैं। उनके काव्य का एक दूसरा और सशक्त पहलू है उन सामान्य श्रमिकों की पीड़ा का जिसे उन्होंने 'किरतार बावनी' नामक स्फुट काव्य में प्रकट किया है। इन छंदों को पढ़ने से तत्कालीन बहुसंख्यक समाज की दयनीय स्थिति का बोध सहज ही हो सकता है। दुरसा ने कोई पचास प्रकार के श्रमजीवियों और पेट-भराई के लिए अन्य कुकर्म करने वाले लोगों की वेदना बड़ी सहानुभूति पूर्वक दरसाई है। यदि यह कृति नहीं होती तो दुरसा मात्र सपन्न वर्ग के विरुदगायक बनकर रह जाते। इस कृति के प्रत्येक छंद में एक व्यवसाय विशेष की समस्त दिनचर्या को चित्रवत् खचित करके दरसाया गया है। वर्णन का यह कौशल संक्षेप में एक बहुत बड़े आयाम को समेटकर रखने में सफल हुआ है। ऐसे श्रमिकों, भिक्षुकों, ठगों और हीन कर्म करने वालों के कुछ उद्धरण देने से यह पक्ष भली प्रकार सिद्ध हो सकेगा—

केवट

रचना प्रवहण रचे, बहुत नर मांहे बेसे,
अथग नीर आंगमे, पूरि जोखम में पेसे,
किण हिक वाय कुवाय, कोरि काजळ री कंपे
अूथ न को आधार, जीव दुख किण सूं जंपे,
जलमाधि नाव बूडें जरे, कोइक विरळो अूगरे।
करतार पेट दूभरि कीया, सो काम एह मानव करे।।

"नौका बनाकर बहुत से लोगों को उसमें बैठाता है, अथाह पानी में पूरी जोखिम उठाकर उन्हें ले जाता है, कोई हवा चलने से मूसलाधार वर्षा हो जाती है, वहां निराधार नाव डूब जाती है तो कोई विरला ही बच पाता है। पेट

के लिए मानव को यह सब करना पड़ता है।"

ठग

पासीगर नैं पेट, हृदय बहुकपट रहावैं,
धोती खखंबर धरै, वळे तिहां तिलक बणावै,
हथमाळा ले हाथि कहै हर गंगा कासी,
मारण टाणो मेलि, पलक मांहि नाखैं पासी,
मानवी रतन नैं मारतां, ओ तिल ही नवि अूगरै।
करतार पेट दूभरि किया, सो काम एह मानव करै॥

"ठग के पेट और हृदय में बड़ा कपट रहता है। वह तिलक, माला और भस्म लगाकर धोती पहिने 'हर-गंगा-कासी' का उच्चारण करता हुआ मार्ग में ठगी रोपता है। पलक झपते ही वह गले में फंदा डालकर मनुष्य रूपी रत्न को मारते हुए जरा भी नहीं हिचकता।"

भिखारी

एक टूक कारणे, भमे घर-घर भिख्यारी,
दीन वचन दाखवे, भणे मुहि लब्बर भारी,
अणदेखे अणदत्त, अडे दे उत्तर आडा,
तो ही रग रग तेथि, मांगि अन मेले माडां,
पिंड रो मान मूके··· धर सूधी भिक्षा धरे।

"एक टुकड़े के लिए भिखारी घर-घर फिरता है, दीन वचन बोलकर गिड़-गिड़ाता है, जब तक कोई न देखे और न दे तब तक अड़ा रहता है, अपमानित होकर भी वह मांग-मांगकर अन्न संग्रह करता है। इस प्रकार सारा स्वाभिमान छोड़कर वह भिक्षावृत्ति करता है।"

इसी प्रकार दुरसा ने अफंडी साधुओं, भवाई-रावल आदि तमाशा करने वालों और भांडों, धरोहर को हड़प जाने वाले दुर्जनों, पशुवध करने वाले कसाइयों, बैलों को बधिया करने वाले पेशेवरों, स्त्रियों को बेचने और वेश्यावृत्ति कराने वाले हरामखोरों तथा चोरों, कासिदों, खनिकों, किसानों, कहारों, बाजीगरों, महावतों, भीलों आदि की कष्टदायक और हीन जीवनचर्या का बखान किया है। दुरसा की सहानुभूति धन कमाने के लिए परदेशों में प्रवास करने वाले व्यवसायियों, अन्न के लिए सैनिकवृत्ति करने वाले राजपूतों, ग्रहणादि पर स्वर्णदान लेने वाले ब्राह्मणों तथा ऐसे ही अन्य विवश लोगों पर भी गई है।

इस वर्णन से उस समय के समाज का यह पक्ष जिस प्रकार स्पष्ट किया गया है वह आम आदमी के दुःखों की कारुणिक गाथा है। सामाजिक विषमताओं के

इन नग्न चित्रों में जहां विवशतायें, अभाव और जीवित रहने की समस्यायें ही दैत्याकार बनी हुई हैं, वहां ऊंचे चारित्रिक गुणों और सांस्कृतिक बुलन्दियों की बात करना ही अपराध होगी। मध्य युग के जो चित्र इतिहासों और काव्यों में अभी तक मिले हैं उनकी तुलना में दुरसा द्वारा चित्रित कोई चारसौ वर्ष पहिले का यह यथार्थ समाज इतिहासकारों के लिए एक चुनौती है। भारत का, विशेष-कर राजस्थान का, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास लिखने वाले विद्वानों के लिए दुरसा का यह काव्य एक बहुमूल्य धरोहर समझा जाना चाहिए।

संस्कृति के बाह्य पक्ष की भी विपुल सामग्री दुरसा के काव्य के सूक्ष्म अध्ययन से प्राप्त हो सकती है। तत्कालीन लोकप्रचलित वेष-भूषा, अस्त्र-शस्त्र, साज-सज्जा, रूप-श्रृंगार, आवासगृहों, कलाओं, विवाहों, रीति-रिवाजों, परंपराओं, मान्यताओं तथा लोक-जीवन के अन्य नानाविध विस्तार की संयोजक सामग्री दुरसा के काव्यों और गीतों में बिखरी मिलेगी। इस विषय में दुरसा के रचे रूपक गीत अधिक सहायक हैं। कुमार अज्जा की 'गजगत' में विवाह का एक सांगोपांग रूपक है जिसमें वर-वधू के समस्त श्रृंगार और वैवाहिक रीतियों का विस्तार से उल्लेख है। आखेट, वर्षा, अतिथि-सत्कार आदि कई रूपकों के गीत बहुत सुंदर बन पड़े हैं जिनमें तत्कालीन जीवन की झांकियां मिलती हैं।

काव्य की दृष्टि से डिंगल काव्य को अतिशयोक्ति का काव्य समझने वाले आलोचकों को उसे उसके सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के लिए भी जांचना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में दुरसा का काव्य निःसंदेह बड़ा मूल्यवान प्रमाणित हो सकेगा।

अध्याय 7

ऐतिहासिक साक्ष्य

अब यह कोई अल्पज्ञात तथ्य नहीं रह गया है कि डिंगल काव्य, जो अधिकांशतः दूहों और गीतों में समाहित है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। डिंगल कवियों ने व्यक्तियों और घटनाओं को ही अपने काव्य की मुख्य विषय-वस्तु बनाया था। अतः इतिहास की दृष्टि से उनका पृथक् स्थान बन जाना समझ में आता है। तत्कालीन काव्य-धारा में प्रचलित अभिव्यक्ति की रूढ़ियों और परंपराओं को समझने वाला कोई भी सुधी आलोचक अलंकारों और रूपकों से लदी शब्दावली में से इतिहास का तथ्य सरलता से खोज सकता है। इतिहास के साथ इस अविच्छिन्न संबंध के कारण ही स्वयं डिंगल गीतकारों ने अपने गीतों को 'साख री कविता'—साक्षी की कविता—कहना ठीक समझा है। इन्हें लिखते समय घटना-संबंधी उल्लेख निम्न प्रकार किया जाता है, यथा—राव बीकैजी बरसंघ नैं छोडायौ तिण साख रो गीत (राव बीका ने वरसंघ को छुड़ाया उस साक्षी का गीत), राव जैतसीजी काम आया तिण साख रो गीत (राव जैतसी काम आये उस साक्षी का गीत), आदि।

इसलिए साधारणतः समस्त डिंगल काव्य से और विशेषतः डिंगल गीतों से इतिहास की सामग्री का संकलन और अध्ययन किया जाना आवश्यक है। दुरसा ने भी शताधिक गीत लिखे हैं। 'माताजीरो छंद' और 'किरतार बावनी' नामक रचनाओं के अतिरिक्त उनकी प्रायः समस्त रचनायें किसी न किसी प्रकार से इतिहास से संबंधित हैं। दुरसा समसामयिक राजनीति के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के निकट संपर्क में रहे, इसलिए उनकी जानकारी वैसे भी प्रामाणिक मानी जा सकती है।

गीतों की रचनाओं के लिए उपयुक्त अवसरों का महत्व था। जब कभी किसी वीर ने युद्ध किया, मृत्यु का वरण किया, अन्याय का विरोध किया, सत्ता के प्रति विरोध-प्रदर्शन किया अथवा कीर्ति के लिए कोई दान दिया, या दुर्ग, आवास, उद्यान आदि का निर्माण किया, तभी कवि की लेखनी को प्रेरणा मिली और उसने उस घटना के केन्द्र-बिन्दु को अपनी अभिव्यक्ति में समेट लिया। सम-

सामयिक साक्ष्य का इससे अधिक और क्या स्रोत हो सकता है ! जिस व्यक्ति का जो कार्य लोकप्रसिद्धि का पात्र होता था वही गीतों का विषय बन सकता था। निन्दा व प्रसंग भी यत्र-तत्र मिलते हैं, पर प्रशस्तिमूलक काव्य ही अधिक है।

राजस्थान का इतिहास तो अभी विस्तार से लिखे जाने की प्रतीक्षा में है। इसलिए ये छोटे-छोटे साक्ष्य भी बटोरे जाने चाहिए। भारतीय इतिहास की अनेक स्थापित धारणाओं में भी ऐसे कुछ प्रसंगों से संशोधन करने की आवश्यकता पड़ेगी। अभी तक मध्यकालीन इतिहासकारों ने फारसी, अरबी इतिहासों तथा विदेशियों के यात्रा-विवरणों का ही अधिक सहारा लिया है। उन्होंने डिंगल काव्यों को इतिहास से पृथक् मानते हुए या तो उनका अध्ययन ही नहीं किया और किया भी तो अतिशयोक्तिपूर्ण मानकर कोई महत्व नहीं दिया। यह सब काव्य-परंपराओं से उनकी अनभिज्ञता के कारण हुआ।

राजस्थान का स्थानीय राजनैतिक इतिहास एक तरह से यहां के राजपूत राजवंशों द्वारा किए गए युद्धों से ही संबंधित है। चारण जाति राजपूतों के अत्यधिक निकट रही है। सामाजिक दृष्टि से समीप रहने के कारण राजनीति में भी चारणों का प्रवेश परामर्श, सहायक, पक्षधर, प्रशंसक आदि रूपों में रहा है। इसलिए चारणों के पास उनके ऐसे कार्यों के विषय में विश्वस्त जानकारी रहती आई है। इन्हीं जानकारियों ने उनकी रचनाओं को भी विश्वस्त बना दिया है।

दुरसा ने जिन-जिन व्यक्तियों और घटनाओं से संबंधित ऐतिहासिक गीत लिखे हैं उनमें से कुछ का विवरण यहां दिया जा रहा है। कुछ गीतों में वर्णित घटनाओं की इतर ऐतिहासिक स्रोतों से पुष्टि करके भी यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि दुरसा द्वारा दी गई जानकारी असत्य नहीं हैं :—

(१) गीत गोपालदास सुरताणोत रो—'बांकीदास की ख्यात' (पृ० 62) के अनुसार यह दक्षिण के युद्ध में काम आया था। यह गीत उस युद्ध का साक्षी है।

(2) गीत मान सकतावत रो—'वीरविनोद' के अनुसार मानसिंह, भीम सीसोदिया को दिए गए वचन के अनुसार, पूर्व में हाजीपुरपट्टन नामक स्थान पर जाकर लड़ मरा था। यह गीत उसी घटना क्रम का साक्षी है।

(3) महाराजा रायसिंह कोड़पसाव दियो तिण साख रो गीत— गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने 'बीकानेर राज्य का इतिहास' में 'दयालदास की ख्यात, के आधार पर इस घटना का उल्लेख किया है।

(4) गीत मेड़तिया मुकुन्ददासजी रौ—सुप्रसिद्ध जयमल मेड़तिया का पुत्र मुकुन्ददास महाराणा अमरसिंह की सहायता करता हुआ राणपुर के

युद्ध में काम आया था। इस गीत में वर्णित इस घटना की पुष्टि 'बांकीदास की ख्यात' में पृ० 95 पर की गई है।

(5) गीत राजा श्री रायसिंघजी बीकानेरीया रो—यह गीत रायसिंह के जैसलमेर में हुए विवाह के अवसर पर कहा गया है जो बीकानेर के सभी इतिहासों के अनुसार एक सत्य है।

(6) गीत जैमल मुहणोत रो—मारवाड़ के दीवान तथा अनेक युद्धों के सेनानायक जैमल मुहणौत नैणसी मुहणौत के पिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। जोधपुर-महाराजा गजसिंह के समय ये दीवान थे। गौ० ही० ओझा ने यह 'टिप्पणी मुहणौत नैणसी की ख्यात' (नागरी प्रचारिणी सभा, भाग पृ० 102) में दी है।

इसी प्रकार ज्ञात ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं से सभी गीतों का तारतम्य बैठाया जा सकता है। इस दृष्टि से दुरसाकृत कुछ प्रमुख गीत इस प्रकार हैं—

1. गीत देवड़ा सवरा रो
2. गीत जगमाल रो
3. गीत किसनसिंघ रो
4. गीत हाम देवड़ा रो
5. गीत सुरताण जैमलोत रो
6. गीत नरबद उरजणोत रो
7. गीत चहुवांण जसवंत भांणोत रो
8. गीत रामदास चांदाउत रो
9. गीत मांडणजी रो
10. गीत सोलंकी वीरमदेजी रो
11. गीत सोलंकी माला सामदासोत रो
12. गीत तोगा सुरताणोत रो
13. गीत अचलदास वलभदोत रो
14. गीत चांदाजी रो
15. गीत राणा अमरसिंह रो
16. गीत सुरत्तांण रो दताणी रै जुद्ध रो
17. गीत देवड़ा प्रिथीराज रो
18. गीत राजा सूरसिंघ रो
19. गीत भाटी गोविन्ददास मानावत रो
20. गीत भाण सोनगरा रो
21. गीत कचरा कूंपावत रो
22. गीत कर्मसेन रो
23. कुंवर रतन महेसदासोत रो गीत
24. गीत भगवानदास ऊदावत रो
25. पूरणमल भाणावत रो गीत
26. बीजा हरराजोत रो गीत
27. गीत चीबा दूदाजी रो
28. गीत राजिश्री रोहितासजी रो
29. महाराजा रायसिंह चीतौड़ परणिया तिण साख रो गीत
30. गीत प्रिथीराजजी री वेल रो

इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि मध्यकालीन राजस्थानी

साहित्य यहां के स्थानीय इतिहास से इतना घुला-मिला है कि दोनों को पृथक् करके देखना वड़ा दुष्कर है। वास्तव में तो इस साहित्य को भली प्रकार समझने के लिए राजस्थान के इतिहास की विस्तृत जानकारी और यहां की सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचय, दोनों ही बहुत आवश्यक हैं। दुरसा जैसे प्रतिभाशाली और अपने समय के अति प्रसिद्ध कवि के गीतों और दूसरी कृतियों से यह तथ्य और भी पुष्ट होता है।

अध्याय ८

एक मूल्यांकन

दुरसा को कुछ आलोचकों ने एक राष्ट्रकवि के रूप में उभारने का प्रयास किया है। उनका आधार 'विरुद छिहत्तरी' नामक रचना है, जिसमें अकबर को एक हिन्दू-विरोधी के रूप में चित्रित किया गया है और महाराणा प्रताप को देश-धर्म के प्रबल रक्षक के रूप में। कुछ शोध विद्वानों ने 'विरुद छिहत्तरी' की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। उनकी मान्यता है कि दुरसा जैसा प्रौढ़ कवि, जिसने अकबर की प्रशंसा में भी काव्य-सृजन किया है और जिसके विषय में अकबर के सान्निध्य की दंतकथायें भी प्रचलित हैं, बादशाह के लिए इतने ओछे शब्द—अकबरिया, तुरकड़ा, आदि—का प्रयोग नहीं कर सकता। दूसरे, कई ऐतिहासिक तथ्य भी, जैसे देवारी द्वार का उल्लेख, भी इतिहास विरुद्ध हैं, क्योंकि उस समय उनका अस्तित्व नहीं था। तीसरे, 'विरुद छिहत्तरी' में प्रयुक्त भाषा तथा आधुनिक भावनाओं की छाया भी दुरसा की भाषा और तत्कालीन कवियों के विचारों से मेल नहीं खाती। इन तर्कों के सामर्थ्य को मानते हुए दुरसा की कृति के रूप में 'विरुद छिहत्तरी' पर कम से कम चर्चा करने की चेष्टा की गई है। हां, उद्धरणों में उसके चुने हुए सोरठे अवश्य दिए हैं ताकि इस साहित्यिक विवाद से परे रहते हुए भी काव्य का रस लिया जा सके।

राष्ट्रकवि के रूप में स्थापना करने वाले आलोचक यहां तक तो ठीक ही हैं कि दुरसा ने पराधीनता स्वीकार न करने वाले वीरों—राणा प्रताप, राव चंद्रसेन, राव सुरताण, आदि की मुक्तकण्ठ से सराहना की है। इस प्रसंग में उन्हें बादशाही ताकत के सामने न झुकने वाले और हिन्दुत्व के पोषकों के रूप में चित्रित किया गया है। पर इनसे कम प्रशंसा उन अन्य अनेक वीरों की भी नहीं की गई है, जिन्होंने मुगलों के पक्ष में लड़ते हुए, स्वामिभक्त सेवकों के रूप में कट मरते हुए, अथवा पारस्परिक वैर का प्रतिशोध लेते हुए, वीरता का प्रदर्शन किया। इस दृष्टि से ऐसी कोई विशिष्टता नहीं रह जाती है जिससे दुरसा ने कुछ चरित्र-नायकों को दूसरों की तुलना में अधिक गौरवान्वित किया हो। आज जब धार्मिक परिप्रेक्ष्य में

अथवा स्वतंत्रता के पुजारियों की भूमिका के रूप में उन घटनाओं पर दृष्टिपात करते हैं तो वे पात्र अवश्य दूसरों से पृथक् और गौरवशाली दिखाई देते हैं। पर जहां तक चारण-काव्य का प्रश्न है उसमें उन्हीं गुणों की वन्दना की गई है जो किसी वीर विशेष में दिखाई दिए। दानवीर की वदान्यता, युद्धवीर का शौर्य, स्वतंत्रता के रक्षक का स्वातंत्र्य-प्रेम, धर्म रक्षक की धर्म-परायणता, स्वामिभक्त का त्याग—जहां जैसा देखा गया उसकी सराहना की गई। इसलिए जहां प्रताप को धर्मरक्षक और स्वतंत्रता प्रेमी के रूप में वन्दित किया गया है, वहीं अकबर के अवतार रूप को, कछावा मानसिंह के अद्भुत सेनापतित्व को, बैरामखां और महावतखां की वदान्यता को यशगीतों में समेट कर दिखाया गया है। ऐसी स्थिति में यह कहना संभवतः संगत नहीं होगा कि दुरसा आधुनिक अर्थों में 'राष्ट्रकवि' थे। तत्कालीन काव्य-परंपराओं और चारण कवियों की विशेष स्थिति का पूरी तरह अध्ययन किए बिना इस प्रकार के निर्णयात्मक दृष्टिकोण को अपनाना सही नहीं है। यदि दुरसा को आज के संदर्भों में राष्ट्रकवि मानें तो उनके चरित्रनायक राणा प्रताप को संकटों में डालने वाले बादशाह अकबर तथा कछावा मानसिंह की प्रशस्तियों के लिए क्या दलील दी जा सकती है? इसलिए अच्छा यही होगा कि दुरसा को तत्कालीन परिस्थितियों में रख कर उनका सही मूल्यांकन किया जाए।

दूसरा बड़ा श्रेय जो दुरसा को दिया जाता है वह उनके द्वारा अर्जित यश और द्रव्य, तथा चारण समाज के लिए और लोकहित के अन्य कार्यों में किए गए व्यय का है। दुरसा के एक लोकव्यवहारज्ञ सफल कवि होने के नाते यह बात समझ में आती है। भौतिक सफलता को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी के रूप में तो स्वीकार करने का प्रश्न नहीं उठता, पर कवि की लोकप्रियता की बात इससे अवश्य सिद्ध होती है। इस मान्यता में कोई दो मत नहीं होने चाहिए कि दुरसा न केवल चारण समाज में बल्कि उच्च वर्ग के शासक एवं सामंत वर्ग में भी बड़े प्रिय थे, और उन्होंने प्रचुर द्रव्य एवं यश अर्जित किया था। उन्हें अनेक 'लाखपसावों' तथा 'कोड़ पसावों' के अतिरिक्त गांवों की जागीरें तथा अन्य दानादि भी प्राप्त हुए थे। अपने सुदीर्घ और संयमित जीवन के कारण वे यह सब कुछ प्राप्त करने में सफल हुए।

लेकिन एक कवि के रूप में उनका मूल्यांकन करते समय इस प्रश्न को दूसरे पहलुओं से देखना होगा। यह सही है कि दुरसा ने पारंपरिक रीति से क्षात्र-धर्मोचित गुणों का बखान कर तत्कालीन क्षत्रिय समाज को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाए रखा, पर ऐसा करने में अपने पूर्वगामी कवियों से उनकी कोई विशेषता नहीं रही। यदि महाराणाओं के प्रसंग में ही लिखा जाये तो महाराणा कुंभा, सांगा आदि के लिए ऐसे ही उद्गार पहिले भी कवियों ने प्रकट किए थे। राव

अमरसिंह के विद्रोह को शत-शत छंदों में अनेक समकालीन भाटों-चारणों ने दुरसा से भी अधिक समर्थ ढंग से बखाना है।

उत्तम काव्य की विभिन्न विधाओं के श्रेष्ठ सर्जकों की गिनती में भी दुरसा का नाम कहीं नहीं लिया जाता है—

कविते 'अलू', दूहे '**करमाणंद**', पात '**ईसर**' विद्या चौ पूर।
छंदे '**मेहो**', झूलणे '**मालो**', '**सूर**' पदे, **गीते** '**हरसूर**'।।

और भी—

कवित 'रूप', 'नरहरी' छप्पय, 'सूरजमल' के छंद।
गहरी झमक 'गणेस' की, रूपक 'हुकमीचन्द।।

गीतों के विषय में चारण कवियों की आलोचनायें अपने ही ढंग की होती थी। जैसे गीतों के विषय में कही गई उक्तियां देखिए—

"गीत गीत **हुकमीचंद** कह्यो, हमै गीतड़ी गावो।"
"**हुकमीचंद** रा हालिया, गुरड़बचां जिम गीत"
हुकमीचंद तणा कह्यिा थका, फेरवां गीत **महादान** फेंकै।"
"**संकरियै सामोर** रा गोळीहंदा गीत।"
"गीतां गिरवरियौह, पीतां दारू हद पड़ै।
पिरथी परवरियौह, सारां कव लोगां सिरै।"

पर, इस प्रकार प्रसिद्ध कवि-उक्तियों में समाना ही एक मात्र मूल्यांकन नहीं है। अनेक सिद्धहस्त कवियों को भी इस प्रकार का सम्मान नहीं मिल पाया है।

ऐसी स्थिति में दुरसा आढ़ा को किसी क्षेत्र विशेष में अतिविशिष्ट नहीं मानते हुए भी उनका संपूर्ण कृतित्व एक पर्याप्त ऊंचे धरातल पर प्रतिष्ठित प्रतीत होता है। इस प्रतिष्ठा और मान्यता के आधार पर्याप्त ठोस हैं। दुरसा की भाषा, उनका पांडित्य, छन्द-रचना का कौशल, रूपक खड़े करने की अद्भुत प्रतिभा, और इन सबसे ऊपर उनकी ओजपूर्ण उद्दात्त शैली वर्ण्य विषय का एक दिव्य चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। इन सब काव्योचित गुणों का सम्मिलित प्रभाव ही दुरसा के कृतित्व की सच्ची सफलता है। इस प्रकार का सर्वतोमुखी सामंजस्य विरले ही रचनाकारों में उपलब्ध होता है।

अपनी प्रौढ़ प्रांजल भाषा को 'वयण सगाई' और अन्य अलंकारों से संजोकर जब वे विविध रूपकों के मनोहारी उद्यान में क्रीड़ा करवाते हैं तो उनकी प्रतिभा से चमत्कृत होना पड़ता है। जब वे अत्यंत ओजपूर्ण शब्दों और भव्य कल्पनाओं से किसी आदर्श व्यक्तित्व का चित्र खींचते हैं तो उसका विराट स्वरूप हृदय पर तत्काल एक गहरी छाप छोड़ देता है। जब वह पांडित्यपूर्ण उक्तियों की एक पर एक शृंखलायें सी गूंथने लगते हैं और सांस्कृतिक संदर्भों का ज्ञानकोश खोल देते हैं तो उनकी विद्वत्ता और सूझ-बूझ के आगे नतमस्तक होना पड़ता है।

अभिव्यक्ति की यह सर्वांगीणता ही दुरसा के काव्य की प्राण बनी हुई है। इसी संदर्भ में चारण कवि के स्वर में स्वर मिलाकर दुरसा की समर्थ उक्तियों के लिए उनकी वचनसिद्धता को स्वीकार करना पड़ता है—

सगत रा पुत्र जाणै कोइक वचनसिद्ध।
उगत री जुगत रा घाट बैंडा॥

"उक्ति की युक्ति का अतिविकट मार्ग कोई-कोई वचनसिद्ध चारण कवि ही जान पाते हैं।"

निस्संदेह दुरसा आढ़ा ऐसे ही वचनसिद्ध शक्तिपुत्र थे।

परिशिष्ट

रचनाओं से उद्धरण

विरुद छिहत्तरी

सोरठा

बुहा बडेरा वाट, बाट तिकण बहणो विसद।
खाग त्याग खलवाट, पूरो राण प्रतापसी ॥1॥
अकबर पथर अनेक, के भूपत भेळा किया।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥2॥
अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै।
रजवट वस समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥3॥
अकवर समंद अथाह, तिह डूबा हिन्दू-तुरक।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥4॥
हळदीघाट हरोळ, घमंड उतारण अरि घड़ा।
आरण करण अडोळ, पुहुंच्यो राण प्रतापसी ॥5॥
थिरन्रप हिन्दुसथान, लातरगा मन लोभ लग।
माता भूमी मान, पूजे राण प्रतापसी ॥6॥
सेलां अणी सिनान, धारातीरथ में धसै।
देण धरम रणदान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥7॥
उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लाखां पिसण।
नेठीगार नकार, पैठो उदियाचल पतो ॥8॥
लंघण कर लंकाळ, सादूळो भूखो सुवै।
कुळवट छोड़ ऋपाळ, पैंड न देत प्रतापसी ॥9॥
वडी विपत सह बीर, वड़ी कीत खाटी वसू।
धरम धुरंधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥10॥
जिण रो जस जग मांह, जिणरो जग धिन जीवणो।
नेड़ो अपजस नांह, पणधर धिनो प्रतापसी ॥11॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ।।12।।

किरतार बावनी

छप्पय

1

विसमी कूअु वरसात, वहै मारग व्यापारी,
संग पहुराइत सोइ, न सूवै को नरनारी।
महियल बरसै मेह, तळै वळि कादव तेतो,
वाजै ओठो वाव, अगनि दुख झेलो ऐतो ।।
चत्रप्रहर खड़ो चित चिंतवे, झड़पाणी माथै झरै।
करतार पेट दूभर किया, सो काम एह मानव करै ।।

2

ले कांधै सुखपाल, होइ चाकर पंथ हालै,
सास पियारो सहै, घणो घट संकट घालै।
भारी नर नै भार, धरा चलतां पिंड धूजै,
सीस तणौ परसेव, पगां नख सूधो पूजै ।।
जीव काम दोहरो जिको, दुख देखंतां आदरै।
करतार पेट दूभर किया, सो काम एह मानव करै ।।

3

बैसै बीच बजार, प्रथम मुखि राम प्रकासै,
लांबो धरती लोटि, मूठ उर पत्थर मारै।
धोवा भरि-भरि धूळ, आंख ऊपर ढिग आणै,
अति तड़कै आकरै, जळै दुख पूरो जाणै।।
तुछ दान नींठ आपै तिको, रगतां दिन सारो रुळै।
करतार पेट दूभर किया, सो काम एह मानव करै ।।

4

नवल सुंदरी नारि, महा अति रूप मनोहर,
निरखै सांमा नेत्र, नवा लयलीण होय नर।
सोळ सजै सिणगारि, सरस तिण देही सोहै,
मांणस केही मात्र, देखि सुरनर मन मोहै ।।

एहवी त्रिया मेले अलग, व्यापारी विरहो वरे।
करतार पेट दूभर किया, सो काम एह मानव करै ॥

राजा मानसिंह रा झूलणा

नीसांणी

1.

पत्ति दुरंगां जेर करि, लख लिद्ध दुरंगां।
है घड़ गै घड़ लक्ख भड़, ऊतारि अलंगां।
तूझ दळां सिर सावळां, विसराम विहूंगां।
छत्री घणी पछाड़ियै, उरि वाढ़ि तुरंगां।
वेद अरत्था कुर रथा, कासी सिवलिंगा।
वूंद बरिक्खां तपरिखां, जळ धारां गंगा।
रैण कणां सर आरिजणा, पाहाड़ सिरिंगां।
स्रग्गि सुरां महिअळ नरां, पाताळि भुइंगां।
भोम त्रिणां गिरवर बणां, नाखत्र निहूंगां।
सीत गुणां जत लखमणां, हणवंत दवंगां।
हेम जळां घण वद्दळां, सामंद तरंगां।
मान तुही जीत्या नको, राजा रण जंगां।

2.

आरति जिम्मी साझतै, दिल्ली सुरताणां।
कूरम हत्थे वाहतां, मत्थै केवाणां।
पाडि मसीत प्रासादि कूं, आदी तुरकाणां।
छापरि तं छू ताणतै, देते मल्हाणां।
पारि करंदो सायरां, पैमाल पठाणां।
वीच सवालख हेमगिर, पंचे नदियाणां।
गंगा सायर खीर सुर, सागर रतनाणां।
मांण सरोवर, सिंधसर, विधो महिराणां।
घाटां बाटां ओघटां, नदिनाळ छिवाणां।
वीच गिरां बड सरवरां, सेवाळ पुराणां।
पीछोला पछिताईआं, तू खरा अयाणा।
साहण मान न जेरिया, कुल तास निवाणा ॥

गीत मुकुंददास मेड़तिया रो

रांणा ची चाड रांणपुरि रहते,
खत वाधरीयू नवे खंडे।
कटकां पूठि मंडंतै कमधज,
मुकुन्द मुकुन्द चै रिदै मंडे ।।
मुकुन्ददास पहचाडि मरणदिनि,
पूगू लेखवता तिणि पोति।
सांकड़ भीड़ विचै न समाणो
जैमल तणो समाणो जोति ।।2।।
मोरू मुअू कांमि मेवाड़ा,
दळ थाभे विहडे दुअण ।
तन आपरा न कीधू टाळू,
हरि चा तन भेळो हुअण ।।3।।
मोटा सांमि सुछळि मेड़तियै,
महि मोटो कीधो मरण।
परमेसर भेळो पूजीजै,
वैकुंठवीर कळोधरण ।।4।।

राव अमरसिंघ रा झूलणा

जाणै सोर भड़क्कियो, जामंगी नगाड़े।
किर नरसिंघ निकासियो, हरि पत्थर फाड़े ।।
काढे बीजळ कोपियो, हाथळ अूपाड़े।
पळवट अूतापा कड़े, जमदढ़ धूराड़े ।।
हिरणाकुस ज्यूं हाथळे, पाड़ियो पछाड़े ।
सिंघ अमर नरसिंघ ज्यूं बैठो बंबाड़े ।।
अूचड़ियां असुरां सुरां, गयपाग सुहाड़े।
जाणे दुरजोधन तणा, भुज भीम भमाड़े ।।
किर कपि धाम विधूंसियो राकस रोसाड़े।
किर लंका रामण तणा हणवंत लगाड़े ।।

राव अमर दिल्ली दळां, पाधर पोठाड़े ।
प्रोठी रावत पोढियो, किर लंक कमाड़े ॥

गीत

राणा प्रताप रो मरसियो

सामो आवियो सुरसाथ सहेलो,
अूंच वहा अूदाणा ।
अकबर साह सरस अणमिलियां
राम कहै मिल राणा ॥1॥

प्रमगुर कहै पधारो पातल,
प्राझा करण प्रवाड़ा ।
हेवै सरस अमलिया हिंदू,
मोसूं मिल मेवाड़ा ॥2॥

एकंकार ज रहियो अळगो,
अकबर सरस अनैसो ।
किसन भणै रुद्र ब्रह्म बिचाळै,
बीजा सांगण वैसो ॥3॥

गीत राठौड़ प्रथीराज री "वेलि" रो

रुकमणि गुण लखण, रूप गुण रचवण,
वेलि तास कुण करे वखाण ।
पांचमो वेद भाखियो पीथल,
पुणियो उगणीसमो पुराण ॥1॥

केवल भगत अथाह कलावत,
तैं जु किसन-त्री गुण तवियो ।
चिहुं पांचमो वेद चालवियो,
नवदूणम गति नीगमियो ॥२॥

मैं कहियो हरभगत प्रथीमल,
अगम अगोचर अति अचड ।
व्यास तणा भाखिया समोवड़,
ब्रह्मतणा भाखिया वड ।।3।।

मरसियो महाराज रायसिंघ कल्याणमलोत रो

वड़ौ सूर सुदतार रायसिंघ बिसरामियौ,
विढण कुण कंवारी घड़ा वरसी ।
कूंजरां तणी मोहताद करसी कवण,
कवण कोड़ां तणी मोज करसी ।।1।।

कळहगुर दानगुर हालियो कलाउत,
लाख ऊपर कवण वाग लेसी ।
अमां गजराज लख मोल कुण आपसी,
दान कुण रीझ सौलाख देसी ।।2।।

जैतहर आभरण सतर घड़ जीपणा,
वरै कुण घड़ा दहवाट बाजा ।
दान फौजां तणा कवण गहणा दियै,
रतन रो मोल कुण दियै राजा ।।3।।

हिंदवां छात दोय बात ले हालियो,
बाळग्यो आंक जुग चिहूं वाने ।
हसत हव हींडता देखसां रायहर,
कोड़ हव खजाने सुणस काने ।।4।।

वीरमदे सोलंकी रा दूहा

ईखे अकबर काह, वीर अमर चा वागिया ।
काळो केहर कणणियो, हाथी हाथळ वाह ।।
झालो झाल भुजेह, वाघ जिही वेढाइतो ।
जड़ियो तिण वेळा जिरह, वणियो वीरमदेह ।।
दुजण साल तिण दीह, नउ झूसण मावै नहीं ।
असमर हाथळ ऊससे, सींह कळोधर सींह ।।

समहर वहते सार, देखे कर दूदावतां।
पूतारै पड़िहारियां, वीरम वका जुझार।।
बांके असि वेकाह, सेल बच्छेका साहिया।
गा माझी वहि माझीए, एके गाहे काह।।
रीठा वीरमदेह, काळो काळाहण करै।
पासाड़ै परवत तणै, अरि गा ओला लेह।।
काळै सूं किवळास, कुमारां गिरवर कीयां।
आयो पाधर अजविये, सुरताणी दळ सास।।
वाळधमळ विरदैत, वीरमदे जिम जिम वधे।
दूजो तिम तिम देखीये, नीमालग नखतेत।।
वीरम वकमि सुवाह, लागो लुहड़ो ही थको।
सपेखे संतोखीया, मात पिता मन माह।।

गीत अकबर बादसाह रो

वाणांबळि लखण क अरजण वाणांबळि,
सिरदस रोळण कंस संधार।
सांसो भांज हुमायु समोभ्रम,
अकवरसाह कवण अवतार।।1।।

निगम साख मानुख गत काहीं,
असपत कथ सांचो जण बार।
वेधण भ्रमर क तूं झकवेधण,
गिरतारण कै तू गिरतार।।2।।

जोगी परा करामत जोतां,
आदम नहीं बड़ो कोई अंस।
धूंसण धणख क करण विधूंसण,
वंसरघू कै तू जदुवंस।।3।।

आख दलीस कूण तू इण में,
अनंत किना नर प्रगट इहां।
सायर बांधणहार दिलेसर,
काळी नाथणहार किहां।।4।।

कुमार अज्जाजी नो गजगत

खागे पोंखणाजी, वंस रो वधामणां।
कंथ कोडामणाजी, भारथ भामणां॥
भामणां अपछर लिये भारथ, कियण माल कोडामणां।
अतरूप, डायो, नाग, अणवर, बहादुर वीयामणां॥
आयुध आखां, थाळ ओडण, वसर ढोल वधामणां।
भालोल भळके, खगे भाले, पटे गरजे पाखणां॥
गहके ग्रीधणी जी, के पळकज पंखणी।
डहके डेयणी जी, जंबुक जोगणी॥
जोगणी जंबक प्रेत पळचर, पिसा वखमल पंखजी।
नोहराळ वोह मुखाळ निसचर, करकसा यत कांकणी॥
चापंक भेख भूत वेतर, देयणी अर डायणी।
वैकुंठ गो तन वाग वेचण, ध्रवड देहालाघणी॥

गीत मानसिंघ सकतावत रो हाजीपुर री वेढ रो

मेवाड़ थकां पूरबगढ माल्है,
अईयो सकतहरा उनमान।
जग परदेस जीववा जावै,
मरवा गयो करारो मान॥ ॥1॥

मांटीपणो लुहाळो मानां,
रहियो घणै घणां दिन रोस।
कोस हेक मरवा जावै कुण,
कंवळो गयो हजारां कोस॥ 2॥

मानसिंघ धिन धिन मेवाड़ा,
अत प्रब भीम तणौ अवसांण।
जोळा हुवैं घणा नर जीवा,
भेळो हुवो समोभ्रम भांण॥ 3॥

पोह बदियो जहंगीर पातसाह,
कहियो धिन राणै करण।
ऊगंतां सूरज जिम ऊगौ,
मानसिंघ वाळो मरण॥ 4॥

गीत सोलंकी रायसिंघ वीरा हमीरोत रो

चितड़ा चालि रे चालुक रै चलणे,
थूड़ै दाळिद थारो।
बड़दाता सुणिजै वीराउत
हैमर बगसण हारो ॥ 1 ॥
मो मन रायासींघ मांगिवा,
हरख करे दिसि हालै।
एकण मोज हमीर अभिनिमो,
पातां दाळिद पालै ॥ 2 ॥
खागे मारि बडा खळ खेसै,
दान सुपात्रां दाखै।
साही माळधणी सोलंकी,
रासो वडछळ राखै ॥ 3 ॥

गीत राणा अमरसिंघ रो

सांगण दूसरा अभनमा उदैसी, अमरा अंबर अड़ियो।
दै आसीस तनैं दसरावो, नवरोजै ना वड़ियो ॥ 1 ॥
चरचै चरण तूझ चीतोड़ा, पुहपमाळ पहरावै।
दासपणो न करै दीवाळी, ईद तणै घर आवै ॥ 2 ॥
पातल रा छळ जाग पतावत, अरसी रा छळ आगै ॥
अिळ जसरात जनमियो अमरा, जमांरात नह जागै ॥ 3 ॥
चित्रांगढ़ हद सोह चाढवा, सोह हमीर सरीखा।
लाखाहरा नकूं लेखवियो, तथ मेलै तारीखां ॥ 4 ॥

गीत राणा अमरसिंघ रो

अणदीठा जिके गाविया अधपत, अणदीधां गाया अवर।
मांगूं हूं इतरो मेवाड़ा, एकण तो तीरे अमर ॥ 1 ॥
गाया म्हैं मांगिया पखै गुण, गढपति गामांपती गणो ॥
मोटा खत्री द्रवो मेवाड़ा, राण खत्रिवंस तणो रणो ॥ 2 ॥

राव रावत रावळ के राजा, राणाहरै राखियो रिण ।
तूं हिंदवाण धणी पातलतण, तो गोढ़ां मांगजे तिण ।। 3 ।।

रिण राखियो घणो राजाने, मिलवां न करै मूझ मन ।
कर अूरण कूंभेण कलोधर, राण अठारह रायहर ।। 4 ।।

सोह सीलणो कियो सीसोदै, सूर सोम ते साखि सुर ।
छत्रियां कुळ लहणो छोड़वियो, राण दियंतै रायपुर ।। 5 ।।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

मुद्रित ग्रंथ

1. रघुवरजस-प्रकास—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1960
2. रघुनाथ-रूपक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3. डिंगल गीत-साहित्य—डा० नारायणसिंह भाटी—चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1971
4. वीर गीत-संग्रह—भाग 1-2—सौभाग्यसिंह शेखावत—राज० प्रा० वि० प्र० जोधपुर, 1968
5. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया, प्रयाग।
6. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी, कलकत्ता।
7. चारण साहित्य का इतिहास भाग-1—डा० मोहनलाल जिज्ञासु, चारण सभा, जोधपुर, 1968
8. गीतमंजरी—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, 1944
9. राजस्थानी सबद कोस—डा० सीताराम लाळस, चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर
10. प्राचीन राजस्थानी कवि (मुद्रणाधीन)—रावत सारस्वत—डा० ब्रजमोहन जावलिया—रा० भा० प्र० सभा, जयपुर
11. महाराणायश-प्रकाश, भूरसिंह शेखावत, जयपुर (खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई)
12. प्राकृत पैंगलम्, भाग 1-2 वाराणसी, 1962
13. छंद-प्रभाकर, बिलासपुर, 1926
14. संक्षिप्त अलंकार मंजरी, प्रयाग, 1971
15. हिस्ट्री ऑफ राजस्थानी लिटरेचर, डा० हीरालाल माहेश्वरी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1980

हस्तलिखित ग्रंथ

1. दुरसा आढ़ा: जीवन और साहित्य—डा० लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, काशीपुर
   (पी-एच० डी० उपाधि के लिए आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबंध)
2. डिंगल गीतों के हस्तलिखित ग्रंथ (रावत सारस्वत का संग्रह)
3. दुरसा आढ़ा के ग्रंथों की पांडुलिपियां (डा० हीरालाल माहेश्वरी का संग्रह)

रावत सारस्वत

1. डिंगल गीत—रावत सारस्वत—सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, 1970
2. महादेव पारवती री बेलि—रावत सारस्वत—सा० रा० रि० इ०, बीकानेर, 1970
3. दलपतविलास—रावत सारस्वत—सा० रा० रि० इ०, बीकानेर, 1970
4. मरुवाणी (मासिक पत्र)—रावत सारस्वत, (राज० भा० प्र० सभा, जयपुर) वर्ष 4-5 (1959-60)